ब्रह्मविद्याका मूल ग्रन्थ



श्यामसुन्दर लाल ।



A Text-Book of Theosophy

BY

C. W. LEADBEATER

TRANSLATED INTO HINDI

BY

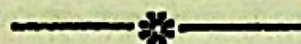
RAO BAHADUR SYAMSUNDAR LAL,
B. A., C. I. E., F. A. U.

PROVINCIAL SECRETARY THEOSOPHICAL SOCIETY,

Central India & Rajputana.

ASSISTED BY

PANDIT DHANNALAL CHATURVEDI, F.T.S.



WITH THE PERMISSION
OF
THE THEOSOPHICAL PUBLISHING HOUSE,
ADYAR, MADRAS.

2nd. EDITION.

2000 Copies.] . 1926. [Price Ten Annas.

CAN BE HAD FROM

(1) The Bharat Dharma Syndicate, Ltd.,
Benares.

(2) Theosophical Publishing House, Benares.

(3) Translator—Alwar.

ब्रह्मविद्याका मूलग्रन्थ

अर्थात्

श्रीमान् दिव्यदर्शक, ब्रह्मज्ञानी, सी. डबल्यू.

लैडबीटर साहबकी

प्रसिद्ध

टैक्स्टबुक आफ थीयासोफ़ी

का

हिन्दी अनुवाद

जिसे

रावबहादुर श्यामसुंदरलाल बी. ए. सी. आई. ई. ऐफ. ए. यू.

प्राविंशियल सेक्रेटरी थीयासोफीकल सोसाइटी

मध्यहिंद व राजपूताना अलवर

ने

पण्डित धन्नालाल चतुर्वेदी एफ. टी. एस.

की सहायतासे

थियासोफीकल पबलिशिंग हौस अड्यार मदरासकी आज्ञाऽनुसार

सर्वजन हितार्थ अनुवाद कर प्रकाशित किया।

द्वितीयावृत्ति २०००] सन् १९२६ [मूल्य ॥=)

पुस्तक मिलनेके पतेः—

(१) भारतधर्म सिण्डिकेट लिमिटेड, बनारस

(२) थियासोफ़ीकल पबलीशिंग हौस, बनारस

(३) अनुवादकर्त्ताके पास, अलवर (राजपुताना)

गोपालचन्द्र चक्रवर्ती द्वारा—
भारतधर्म प्रेस, काशीमें मुद्रित ।

भूमिका ।

—:o:—

ब्रह्मविद्याके भांत २ के विषयोंपर अंग्रेज़ी भाषामें तो बहुतसी पुस्तकें ब्रह्मविद्या सभाके नेताओंने अपने योगबलसे निर्णय कर २ के रची हैं, जिनका जगत भर पर प्रभाव पड़ रहा है; परंतु हिंदी भाषामें उनका उल्था अभी तक प्रायः नहीं हुआ है, जिससे कि उन थोड़ेसे लोगोंके सिवाय जो अंग्रेज़ी जानते हैं सर्वसाधारणको लाभ उठानेका अवसर नहीं मिलता है ।

इसलिये थियासोफ़ीकल पबलिशिंग हौस बनारस व जनरल सेक्रेटरी साहबकी अनुमतिसे हमने उल्थाका प्रबन्ध करके श्रीमान् सी. डबल्यू. लैडबीटर साहबकी टैक्स्ट बुक आफ थियासोफ़ी नामी अमूल्य पुस्तक, (जिसमें सृष्टि और ब्रह्मज्ञानकी सब बातें सरल रीतिसे बतलाई गई हैं) सबसे पहले हाथमें ली है, और उल्था ऐसी साधारण हिंदी बोलीमें किया है कि जिसको स्त्रियां भी भली भांत समझ सकें ।

इसमें जगह २ पर नकशे लगा दिये गये हैं । और नोट भी देदिये गये हैं कि जिससे समझनेमें सुभीता हो ।

इस पुस्तकके प्रारंभमें अकारादि क्रमसे विस्तारके साथ सारगर्भित सूची भी लगादी गई है कि जिस किसी बातका ब्यौरा देखना चाहो सुभीतेसे निकल सके।

ऐसे ही ढंगपर इस अमूल्य पुस्तकका सहल उर्दूमें उल्था भी तैयार हो रहा है जो जल्द छप कर सेवामें पहुंचेगा।

इसके पीछे एक एक करके थियासोफीकल मेन्यूअलोंका हिंदी और उर्दू तरजुमा भी हाजर किया जावेगा।

निवेदक—

राव. ब० बाबू श्यामसुन्दर लाल

बी. ए. सी० आई० ई०

एफ. ए. यू. प्राविंशियल सेक्रेटरी मध्यहिंद व राजपूताना

और—पण्डित, धन्नालाल चतुर्वेदी।

विषयानुक्रमणिका

अध्याय		विषय	पृष्ठ से	तक
पहला अध्याय		ब्रह्मविद्या क्या है ?	१	१२
दूसरा	"	ब्रह्मसे लेकर मनुष्य तक	१३	२५
तीसरा	"	सूर्य जगत्‌की रचना	२६	४०
चौथा	"	प्राणका विकाश	४१	५६
पांचवां	"	मनुष्यकी बनावट	६०	६१
छठा	"	मौतके पीछेका वृत्तांत	६२	१४१
सातवां	"	पुनर्जन्म (आवागमन)	१४२	१५७
आठवां	"	जीवनका अभिप्राय	१५८	१७५
नवां	"	मन्वन्तरोंका वृत्तान्त	१७६	१९२
दशवां	"	ब्रह्मविद्याके अभ्यास का फल ...	१९३	२१३

चित्रोंकी सूची ।

विषय	(१)	पैरा	अ०

विषय	पैरा	अ०

शुद्धि-पत्र ।

अशुद्ध ।	शुद्ध ।	पृष्ठ ।	पंक्ति ।
क्रमोन्नतिका	क्रमोन्नतिकी	२	२०
वातको	वातको पुष्ट	३	१०
कहती	करती	१०	८
वाला	वाला है	१२	२
जो और	जायगा जो	१५	१२
यों	ज्यों	१९	५
४९२	$४९^{२}$	३०	३
४९२	$४९^{२}$	"	७
४९३	$४९^{३}$	"	९
४९४	$४९^{४}$	"	१३
४९५	$४९^{५}$	"	१५
४९६	$४९^{६}$	"	१६
Mebula	Nebula	३२	८
सूक्ष्मर	सूक्ष्मतर	३६	६
अणुम	अणुमें	६०	११
प्रतलोक	प्रेतलोक	६२	२२
पितृलोकने	पितृलोक	६३	२२
जो जो	ज्यों ज्यों	६७	४
बहद्	बेहद्	७०	११
इस	इन	७२	१३
इसलिये लिये	इसलिये	८१	५
रह	तरह	८८	२२
कितनी	जितनी	९०	२०
दिनों	दोनों	९५	१३
उत्तरके	ऊपर	१०१	१६
रीर	शरीर	११६	५
क्तिका	भक्तिका	१३९	८
जीनव	जीवन	१५९	२२
निलता	मिलता	१६६	७



ब्रह्मविद्याका मूल ग्रंथ।

॥ पहला अध्याय ॥

ब्रह्मविद्या क्या है ?

"शास्त्रोंमेंसे एक शास्त्र ऐसा है कि जो अब भी बना हुआ है परंतु जिसको आजकलके पढ़े लिखे लोग भूल गये हैं"। ये वे शब्द हैं कि जिनको ए. पी. सिनेट साहबने अपनी पुस्तक "गुप्त लोक" (आकल्ट वर्ल्ड) के आरंभमें लिखा था और यह ब्रह्मविद्या (थियोसाफी) की पहली साधारण पुस्तक थी, जो तीस वर्ष पहले छपी थी। इन तीस वर्षोंमें हजारोंको इस शास्त्रसे ज्ञान मिला है तो भी बहुतसे इसकी बातोंको अब भी नहीं जानते हैं और अगर उनसे यह

पूछा जाय कि ब्रह्मविद्या क्या है ? तो उनका उत्तर गोल गोल होता है।

२—दो पुस्तकें अभी ऐसी हैं जो इस प्रश्नका उत्तर देती हैं एक तो सिनेट साहबकी "बौधमतका मर्म" (ऐसोटरिक बुधिज्म) और दूसरी श्रीमती एनीबसंतका "प्राचीन ज्ञान" (दी एन्शेंट विज़डम)। मेरा विचार इन आदर्श ग्रन्थोंसे होड़ करनेका कदापि नहीं है, मैं तो इतना ही चाहता हूं कि जहांतक हो सके ऐसा साफ और सरल लेख लिखूं कि जो उन ग्रंथोंकी भूमिकाका काम देवे।

३—ब्रह्मविद्याकी बात चलनेपर हम बहुधा यह कहा करते हैं कि यह कोई अलग मत नहीं है, किन्तु सब मत मतांतरोंका एकसा आधार है। यह तो है ही, परन्तु दूसरी दृष्टिसे देखा जाय तो हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि वह एक रीतिसे विज्ञानशास्त्र, (फ़िलोसोफी) एक रीतिसे धर्मशास्त्र (रिलिजियन) और एक रीतिसे पदार्थ विद्या (साइन्स) है ॥ विज्ञान शास्त्र (फलसुफा) यों है कि हमारे सूर्य्य जगत् (निजाम शम्सी) में जो आत्माएं और शरीर हैं उनकी विकाशक्रम (क्रमोन्नति) की शैली (सिलसिला) इसमें भलीभांति समझाई जाती है। वह धर्म शास्त्र यों है कि पहले विज्ञान शास्त्रके विभागमें क्रमोन्नतिका साधारण शैली बतलाकर अब यह भी बतलाती है कि उस क्रमको थोड़े ही समयमें कैसे पूरा करें कि जिससे हम अपने लक्ष्य (मनजिल मकसूद) की ओर

सीधे पहुंचनेका अपने आप प्रयत्न (कोशिश) कर सकें। और ब्रह्मविद्या पदार्थविद्या इसलिये है कि वह इन दोनों विभागोंकी बातोंको माननेमें किसी धर्मपुस्तकका आश्रय नहीं लेती किन्तु उन्हें प्रत्यक्ष प्रमाणकी अर्थात् आंखों देखी बतलाती है। परन्तु यह कहती है कि वे अभ्यास और निर्णय-से प्रत्यक्ष हो सक्ती हैं। ब्रह्मविद्या यह बतलाती है कि मनुष्य-को मूढ़ विश्वास करनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि मनुष्यमें छिपी हुई ऐसी शक्तियां हैं कि जो उभारी जा सक्ती हैं और जिनके उभारनेसे मनुष्य अपने आप देखने और परीक्षा कर-नेके योग्य हो सक्ता है, और इस बातको करनेमें वह यह भी बतलाती है कि ये शक्तियां किस तरह उभारी जा सक्ती हैं। ब्रह्मविद्या स्वयं ऐसी शक्तियोंका ही फल है अर्थात् जो बातें कि इसमें सिखाई जाती हैं वे प्राचीन कालमें ऐसी उन्नत की हुई शक्तियोंसे प्रत्यक्ष सिद्ध हुई हैं।

४—विज्ञान शास्त्रके रूपमें ब्रह्मविद्या हमें यह बताती है, कि सूर्य्य जगत् एक बहुत चतुराईसे रचा हुआ यंत्र है या यों कहिये कि वह एक विशाल जीवन शक्तिका विकाश (फैलाव) है इस विकाशका मनुष्यमात्र केवल एक छोटा अंश है, परन्तु हमारा इससे घनिष्ठ सम्बन्ध है; इसलिये ब्रह्मविद्यामें मनुष्य-जातिका भूत, भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालोंका पूरा पूरा वृत्तांत दिया जाता है।

५—मनुष्यके वर्तमानके वृत्तान्तमें यह दिखलाया जाता है

कि यदि उन्नत शक्तियों (योगसिद्धियों) से देखा जाय तो मनुष्य वास्तवमें क्या है। यह कहावत प्रचलित है कि मनुष्यके आत्मा होती है; परन्तु ब्रह्मविद्या प्रत्यक्ष प्रमाणसे इस कहावतको उलट देती है, और ऐसा कहती है कि मनुष्य स्वयं आत्मा है और उसके शरीर होता है; सच तो यह है कि उसके एक ही नहीं कई शरीर होते हैं जो कि अलग अलग लोकोंमें उसके वाहन या सवारी और औजारका काम देते हैं। इन लोकोंके स्थान अलग अलग नहीं हैं वे सबके सब इसी स्थान और इसी समयमें हमारे आसपास हैं और ऐसे हैं कि जिनकी छानबीन हो सक्ता है। ये लोक स्थूल प्रकृति (आधिभौतिकसृष्टि)के विभाग हैं और ये विभाग परमाणुओंके छीदेपन या घनेपनके विचारसे होते हैं जैसा कि आगे ब्योरेवार वर्णन किया जायगा। मनुष्य इन लोकोंमेंसे कइयोंमें रहता है किन्तु साधारण रीतिसे उसे बोध केवल सबसे नीचेके लोक (सबसे घने लोक) का होता है, परन्तु कभी २ उसे स्वप्न और मूर्छामें कोई दूसरे लोकोंकी भी झलक पड़ जाती है। जिसे मौत कहते हैं वह सबसे नीचे अर्थात् स्थूल लोककी सामग्रीसे बने हुए शरीरका उतार डालना है परंतु इससे ऊंचे लोकमें आत्मा या असली मनुष्यमें कोई अंतर नहीं पड़ता है जैसे कि ऊपरसे अपना वस्त्र उतार डालनेसे हमारे स्थूल शरीरमें अंतर नहीं पड़ता। ये सब बातें कपोल कल्पित नहीं हैं किन्तु देखी हुई और परीक्षा की हुई हैं।

६—ब्रह्मविद्या मनुष्यके पिछले इतिहासकी भी बहुत कुछ बातें बतलाती है अर्थात् यह कि क्रम २ से उन्नति करते २ वह अपनी वर्तमान अवस्था तक किस २ प्रकार पहुंचा है। यह पिछला वृत्तान्त भी प्रत्यक्ष देखकर बतलाया गया है; क्योंकि जो कुछ होता है उसका आकाशमें अटल लेख बना रहता है मानो वह विधाताकी स्मृति है। अगर कोई इस लेखको जाँचे तो पिछली अवस्थाओंके चित्र उसकी आंखोंके सामनेसे ऐसे निकलने लगते हैं मानो वे इसी क्षण सचमुच हो रहे हैं। इस प्रकार मनुष्यके पिछले वृत्तांतकी जांच करनेसे हमें यह भी निश्चय हुआ है कि मनुष्यकी उत्पत्ति ईश्वरसे है, और उसकी उन्नति (तरक्की) धीरे २ बहुत प्राचीन कालसे हो रही है, और यह उन्नति भी दो प्रकारकी है एक प्राण अर्थात् भीतरके जीवकी और दूसरी बाहरके शरीरकी। इससे यह भी निश्चय होता है कि मनुष्यके जीवात्माकी आयु (उमर) अत्यन्त बड़ी है और यह कि जिसको हम साधारण बोलीमें मनुष्यका एक जन्म या जिन्दगी कहते हैं वह सच पूछो तो उसके वास्तविक जीवनका केवल एक एक दिन है। वह इस तरहके कितने ही दिन व्यतीत कर चुका है, और अब भी बहुतसे ऐसे दिन उसे व्यतीत करना है। और यदि हम उस असल जीवन और उसके प्रयोजनको समझना चाहें तो हमको चाहिये कि केवल इस एक दिन (ज़िन्दगी) के जीवनका विचार न करें जो जन्मसे आरम्भ होता है, और मरनेपर समाप्त होता है किन्तु उन

दिनों अर्थात् जन्मांतरका भी विचार करना चाहिये जो बीत चुके हैं और जो अब आनेवाले हैं।

७—जो जन्मांतर कि अब आनेवाले हैं उनका भी बहुत कुछ वर्णन करना है। और इसमें भी बहुत कुछ व्योरेवार वृत्तांत मिलता है ऐसा वृत्तांत पहले तो उन मनुष्योंसे मिलता है जो हमसे उन्नतिके मार्गपर बहुत आगे हैं; और इसलिये उनको उसका प्रत्यक्ष अनुभव है, दूसरे उस अनुमानसे भी जो पिछली उन्नतिकी पंक्तियोंकी स्पष्टगतिपर बांधा गया है। हमारे इस युगका जो लक्ष्य है वह हमसे अब भी बहुत ऊंचा है परन्तु दिखाई पड़ने लगा है। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि कालांतरमें उस लक्ष्यके मिल जानेपर भी आगे भी हरएक उत्साहीके लिये अनंत उन्नतिकी ठोर बनी रहेगी।

८—ब्रह्मविद्याके लाभोंमेंसे सबसे बड़ा लाभ यह है कि जो ज्ञान इससे प्राप्त होता है उससे हमारी बहुतसी शंकाएं मिट जाती हैं, हमारे बहुतसे प्रश्नोंका उत्तर मिल जाता है, और संसारमें जो ऊपरी निगाहसे देखनेमें अन्यायकी बातें नजर आती हैं उनका समाधान हो जाता है, और जो २ बातें नियमरहित और गड़बड़ दिखलाई देती थीं वे इसके ज्ञानसे ठीक और नियमबद्ध बोध होने लगती हैं। यों ब्रह्मविद्या कुछ बातें ऐसी बतलाती है कि जो उन शक्तियों (सिद्धियों) से देखी गई है कि जो संसारके साधारण मनुष्योंके ज्ञानसे बाहर है, तौ भी अगर वे थोड़ी देरके लिये मान लें कि ये सच्ची हैं तो उनको

यह बहुत जल्दी निश्चय हो जायगा कि ये अवश्य सच्ची हैं क्योंकि इस कल्पनाके सिवाय और कोई ऐसी युक्ति नहीं है कि जिससे इस जगत्‌रूपी नाटकका ऐसा समाधान हो सके कि जिसमें कोई विरोध न आवे और जो बुद्धिके अनुकूल हो।

९—जो बड़ी २ नई बातें ब्रह्मविद्याने पश्चिमी देशोंमें प्रकट की हैं उनमें मुख्य ये दो हैं—अर्थात् एक तो यह कि पहुंचे हुए मनुष्य (ऋषि मुनि) साक्षात् विद्यमान हैं और दूसरी यह कि यह संभव है कि वे मिल भी सक्ते हैं और उनसे शिक्षा भी प्राप्त हो सक्ती है। इसी प्रकार एक और बड़ी नई बात जो ब्रह्मविद्याने बतलाई है वह यह है कि इस जगत्‌का प्रवाह अंधाधुंध और प्रबंधरहित नहीं है किन्तु उसकी गतिकी संभाल उत्तम और सुरचित ऋषिसंघ (समाज) के हाथमें है; इसलिये यह तो कभी नहीं हो सक्ता कि इस जगत्‌के नन्हें-से नन्हें अंशमें भी अंतमें कोई न्यूनता रह सके। अगर इस ऋषिसंघके निबंधकी झलक भी किसीके पड़ जाय तो उसके मनमें निस्संदेह ऐसी इच्छा उत्पन्न होगी कि मैं भी इसके साथ काम करने लग जाऊं और इसके नीचे रहकर कोई सेवा चाहे कैसी ही तुच्छ क्यों न हो करने लग जाऊं और कालांतर-में कभी न कभी उस ऋषिसंघकी बाहरी कक्षाओंमें भरती हो सकूं।

१०—अब हम ब्रह्मविद्याके धर्मशास्त्ररूपका वर्णन करते हैं। जो मनुष्य इन बातोंको समझने बूझने लगते हैं, वे क्रमो-

न्नतिकी ऐसी साधारण गतिसे जो कल्पौतक मन्द मन्द चलने-वाली है उकता जाते हैं; और उन्हें यह लालसा उत्पन्न होने लग जाती है कि वे जल्दी ही उपयोगी बन जायं, इसलिये वे उत्साही होकर उस कठिन पगडंडोके मार्गका उपदेश ले लेते हैं। इस उन्नतिके लिये जितना श्रम होना है, वह टल नहीं सकता है; जैसे कि अगर कुछ बोझ पहाड़पर ले जाना है. तो उसको चाहे कोई कठिन पगडंडो होकर सीधा ऊपर ले जाय चाहे धीरे धीरे फेर खाकर नरम चढ़ावकी सड़क होकर ले जाय, परन्तु जितना बल एक रीतिसे खर्च करना पड़ेगा, ठीक उतना ही दूसरी रीतिसे। तात्पर्य यह है कि, उतने ही काम-को थोड़े समयमें करनेमें चेष्टा अधिक लगनसे करनी होगी, परन्तु ऐसा हो अवश्य सकता है, क्योंकि ऐसा पहले हो चुका है; और जिन्होंने ऐसा किया है वे सब यह कहते हैं कि इसमें श्रमको देखते लाभ बहुत अधिक है। ऐसा करनेसे अनेक शरीरोंकी न्यूनता धीरे धीरे दूर हो जाती है और छुटकारा पाकर मनुष्य, प्राणीमात्रकी उन्नतिके इस बड़े प्रबन्धमें बुद्धि-पूर्वक सहायता देने लगता है।

११—धर्मशास्त्रके रूपमें भी ब्रह्मविद्या अपने भक्तोंको सदाचारके नियम बतलाती है। इन नियमोंका आधार अनु-भव सिद्ध साधारण समझपर है, न कि किसी प्राचीन वचन पर। इन नियमोंके पालन करनेमें जो भाव ब्रह्मविद्याके जिज्ञासुओंका होता है, वह उस भावसे मिलता है कि, जिससे

हम स्वास्थ्यसम्बन्धी नियमोंका पालन करते हैं न कि मत-सम्बन्धी वचनों या आज्ञाओंके पालन करनेके भावसे। अगर हम चाहें तो यह कह सकते हैं कि यह बात या वह बात दैवी-इच्छाके अनुकूल है, क्योंकि दैवीइच्छाकी सूचना उन नियमों-में है, जिनको हम प्रकृतिके नियम जानते हैं। यह दैवी इच्छा सब वस्तुओंको बुद्धिमानीसे रचती है। इसलिये प्रकृतिके नियमोंको तोड़ना मानो विश्वकी शांतगतिमें विघ्न डालना है, या थोड़ी देरके लिये सर्गके एक नन्हें अंशको रोक रखना है, और इस रीतिसे अपने ऊपर और दूसरोंपर कष्ट डालना है। बुद्धिमान् लोग जो नियमोंके तोड़नेसे बचते हैं उसका हेतु यही है, न यह कि किसी कोपायमान देवताके मन-कल्पित क्रोधसे बचें।

१२—परन्तु एक रीतिसे यदि ब्रह्मविद्याका धर्मके रूपमें विचार करें, तो इसमें और उस मतमें जिसको कि साधारण बोलीमें पश्चिम देशवासी धर्म कहते हैं—दो बड़ी बातोंका भेद है। पहली तो यह कि ब्रह्मविद्या यह नहीं कहती है कि उसके ऊपर चलनेवालोंको अमुक अमुक बातोंको मूढ़ विश्वास करके मानना ही चाहिये, यही नहीं वरन् इसमें ऐसे विश्वास शब्दकी चर्चातक नहीं है। गुप्त विद्याका अभ्यासी किसी बातको या तो निश्चित जान लेता है या जहांतक निश्चित न हो उस मतको सन्देह भरा हुआ रखता है, परन्तु वह मूढ़ विश्वास नहीं करता। इसमें सन्देह नहीं कि

अभ्यासी पहले पहल अपने आप निश्चय नहीं कर सकते हैं, इसलिये ब्रह्मविद्या उनसे यह कहती है कि जो जो बातें तलाश हो चुकी हैं उनके सिद्धान्तोंको संकेतकी तरह मान लें, अर्थात् थोड़ी देरके लिये सच्चा मानकर उनको काममें लाने लग जावें जबतक कि वे उनको अपने आप साक्षात् न कर सकें।

१३—दूसरे कोई मनुष्य किसी धर्ममें क्यों न हो ब्रह्मविद्या उसको उससे छुड़ानेकी चेष्टा नहीं करती। ब्रह्मविद्या तो उलटा यह कहती है कि उसे उसके मतमें जो शंकाएं हों उनका समाधान कर देती है, और इससे उसको अपने ही मतमें पहलेसे अधिकतर गूढ़ आशय दिखलाई पड़ने लग जाते हैं। ब्रह्मविद्याके प्रतापसे अब वह अपने मतको अधिक समझने और उसपर अच्छी रीतिसे चलने लग जाता है। और बहुधा तो ऐसा होता है कि उसको अपने मतमें प्रायः गया हुआ विश्वास पीछा आ जाता है और वह भी बुद्धियुक्त और ऊंची कक्षाका होता है।

१४—ब्रह्मविद्याका एक रूप पदार्थविद्याका भी है, वह वास्तवमें प्राणविद्या अर्थात् अध्यात्म विद्या ही है। वह हर एक बातमें पदार्थविद्याके ढंगपर चलती है अर्थात् बार बार श्रमपूर्वक खोज करके जो बातें मिलें उन्हें इकट्ठी करती है और उनसे सिद्धान्त निकालती है। इस प्रकार ब्रह्मविद्याने नर्क स्वर्गादि लोकान्तरोंकी छान बीन की है, और यह भी निश्चय किया है कि जीते जी और मरनेपर मनुष्यके जीवकी

क्या क्या दशा होती है। यहां यह भी जतलाना जरूरी है कि ये बातें जो ब्रह्मविद्यावाले बतलाते हैं मनकल्पित या मूढ़-विश्वासकी नहीं है किन्तु बार बार और प्रत्यक्ष देखी हुई है। इसकी जांच करनेवालोंने साधारण पदार्थविद्याकी बातोंकी भी कुछ कुछ तलाश की है, जैसा कि उस पुस्तकके पढ़नेसे जान पड़ेगा जो कि रसायनरहस्य (आकल्ट कैमिस्ट्री) के नामसे रसायन विद्याके गूढ़ विषयोंपर हालमें प्रकाशित हुई है।

१५—ऐसे जान पड़ता है कि ब्रह्मविद्यामें विज्ञानशास्त्र, धर्मशास्त्र और पदार्थविद्या तीनोंके कुछ कुछ अङ्ग आ गये हैं। परन्तु ये प्रश्न हो सक्ते हैं कि दुखिया जगत्के लिये यह क्या मंगल समाचार लाई है ? और इसकी तलाशसे कौन कौनसी बड़ी बातें निकली हैं ? और मनुष्य जातिको यह कौनसी बड़ी बातें बतलाती है ?

१६—इनके उत्तरमें तीन बड़ी बातें बतलाई गईं हैं जो कि नित्य हैं और जिनका अभाव नहीं हो सकता है किन्तु शब्दके अभावसे वे कहनेमें नहीं आसक्ती हैं।

(अ) "मनुष्यकी आत्मा अमर है और उसका भविष्य ऐसा है कि इसकी वृद्धि और तेजकी सीमा नहीं है"।

(इ) "वह शक्ति जो हमारे जीवनका कारण है हमारे भीतर और हमारे बाहर रहती है। वह अमर है और निरंतर हितकारी है। वह सुनने देखने या सूंघनेमें नहीं आती है परंतु यदि कोई चाहे तो वह इसका अनुभव कर सक्ता है"।

(ङ) "हर मनुष्य अपने लिये आप ही अकेला न्याय करने वाला; वही स्वयं अपने आपको शुभ या अशुभ करने वाला है; और वही अपनी जीवनकी व्यवस्था और अपने पारितोषिक वा दण्डका निर्णय करनेवाला है"।

१७—"ये सिद्धांतकी बातें हैं तो गम्भीर परन्तु साधारण मनुष्यकी समझमें भी सुगमतासे आ सकती है। साधारण बोलीमें थोड़ेसे शब्दोंमें इनका यह अर्थ है, कि परमेश्वर भला है, मनुष्य अमर है, और जैसा हम बोते हैं वैसा हमें मिलता है।

१८—जगत्की बातोंका नियमित प्रबन्ध है, यह प्रबन्ध बुद्धिमानोंकी संभालमें है और ऐसे नियमोंसे चलाया जाता है जो बदलते नहीं हैं। इस प्रबन्धमें मनुष्य भी एक ठौरपर हैं और उसका जीवन इन्हीं नियमोंके आधीन है। अगर वह इन नियमोंको समझ लेगा और उनके साथ साथ चलेगा तो वह जल्दी उन्नति करेगा और सुखी होगा। अगर वह इन नियमोंको नहीं समझेगा या इन नियमोंको जानकर या अनजाने तोड़ डालेगा तो उसकी बढ़तीमें ढील होगी और उसे दुःख होगा। ये कल्पनाएँ नहीं हैं किन्तु सिद्ध की हुई (सबूत की हुई) सच्ची बातें हैं। जिस किसीको शंका हो उसे चाहिये कि पढ़ता चला जाय और पढ़ते पढ़ते उसका समाधान हो जावेगा।

———

दूसरा अध्याय ।

ब्रह्मसे लेकर मनुष्य तक ।

निर्गुण, अनन्त और सर्वव्यापक ब्रह्मकी हम अपनी वर्तमान अवस्थामें कोई बात नहीं जान सक्ते हैं सिवाय इसके कि उस ब्रह्मकी सत्ता है। जो कुछ कि कहनेमें आ सक्ता है वह विना सीमाके नहीं हो सक्ता और इसलिये वह ब्रह्मपर ठीक नहीं लग सक्ता।

२—उस ब्रह्ममें असंख्य विश्व हैं. एक एक विश्वमें अनगिनत सूर्य्यजगत् हैं। एक एक सूर्य्यजगत् एक बड़े पुरुषका प्रकाश है ? जिसको शब्दब्रह्म या सूर्य्यदेव कहते हैं। साधारण वोलीमें यों कहेंगे कि वह इस सूर्य्यजगत्का ईश्वर है। वह इस जगत्में व्यापक है और इसमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो ईश्वर न हो। दृश्य वस्तुओंमें ईश्वरके आभासको सूर्य्यजगत् कहते हैं। वह ईश्वर इस जगत्के ऊपर और बाहर भी विद्यमान है। वह अपने बराबरवालोंमें विशाल जीवन धारण किये हुए रहता है। इसी आशयसे पूर्व देशकी धर्म्मपुस्तकोंमें यह लिखा है।

विष्टभ्याहमिदंकृत्स्नं एकाँशेन स्थितो जगत्।

(गीता अ० १० श्लो० ४२)

जिसका अर्थ यह है कि इस संपूर्ण जगत्में मैं एक अंश-से व्यापक हूँ और फिर भी शेष रहता हूं।

३—इस जगत्से उपरांत जो उसका जीवन है उसकी हम कोई बात नहीं जान सकते हैं। परन्तु उसके प्राणका जो अंश इस जगत्को चैतन्य कर रहा है, उसके नीचेकी कक्षाओंके आभासका कुछ वृत्तान्त हमारे ज्ञाननेमें आ सकता है। हम उसे नहीं देख सकते, परन्तु हम उसको शक्तिको काम करते देख सकते हैं। दिव्यदृष्टिसे इतना प्रबल प्रमाण मिलता है कि कोई भी दिव्यदर्शी नास्तिक अर्थात् अनीश्वर-वादी नहीं रह सकता।

४—ईश्वरने अपनेमेंसे इस विशाल जगत्को उत्पन्न किया है। हम जो इस जगत्में हैं उसके प्राणके खिलनेवाले अंश अथवा उसकी दैवीअग्निकी चिनगारियां हैं अर्थात् ईश्वर ही से हम निकले हैं और उसीमें फिर मिल जावेंगे।

५—बहुधा ये प्रश्न पूछे जाते हैं कि ईश्वरने ऐसा क्यों किया है; उसने इस सारे जगत्को अपने आपमेंसे क्यों निकाला है; और उसने हमको इस संसारकी आपत्तियोंका सामना करनेको क्यों भेजा है। यह हम नहीं जान सकते और न यह प्रश्न साध्य है। बस बात तो यह है कि हम यहां हैं और हमको भरशक्ति पुरुषार्थ करना है। तथापि बहुतसे विज्ञानियोंने इस विषयपर विचार किया है और कई बातें

सुझाई हैं। मेरी समझमें इन सबमें जो सुन्दरसे सुन्दर है वह एक आस्तिक विज्ञानीकी है। और वह यह है।

६—"ईश्वर प्रेम है परन्तु प्रेम अपने आप पूर्ण नहीं हो सकता जबतक कि ऐसे लोग न हों कि जिनपर प्रेम बरसाया जा सके और जो इसका बदला दे सकें। इसलिये ईश्वरने अपनेमेंसे कुछ चेतनका अंश जड़में डाला है और अपने प्रकाशकी सीमा बांध दी है ताकि इस साधारण और धीमी क्रमोन्नतिकी शैलीमें होकर हम उत्पन्न हो जावें अर्थात् मनुष्य बन जावें, और हमको भी उसकी इच्छानुसार उन्नति करना है जबतक कि हम ईश्वरकी ही कक्षातक न पहुंच जावें, और तब वही ईश्वरका प्रेम और भी अधिक पूर्ण हो जावेगा, क्योंकि तब वह उनपर बरसाया जो और उसके बच्चे हैं जो कि उसको पूरा समझने लगेंगे और उसका बदला देंगे, और इस रीतिसे उसके महत् प्रबन्धका प्रयोजन सिद्ध होगा और उसकी इच्छा पूर्ण होगी।"

७—उसका चेतन कितना अधिक ऊंचाईपर रहता है यह हम नहीं जानते और न हम यह जान सक्ते हैं कि उस ऊंची कक्षापर उसके चेतनकी सच्ची व्यवस्था क्या है। परंतु जब वह अपनेको ऐसी व्यवस्थाओंमें डालता है जो हमारी पहुंचमें है तब उसका आभास तीन प्रकारका होता है और इसीलिये सब मतोंमें उसको त्रिमूर्तिके रूपमें माना है; तीन रूप परन्तु मूलमें एक, अर्थात् तीन शरीर या भेष, पर एक ईश्वर जो

अपनेको उन तीनों रूपोंमें दिखला रहा है। नीचेसे अगर उनकी ओर ऊपरको देखें तो वे हमको तीन जान पड़ते हैं, क्योंकि उनके काम अलग अलग हैं, परन्तु ईश्वरको वे एक ही दिखलाई पड़ते हैं क्योंकि वह जानता है कि ये तीनों मेरे ही पहल हैं।

८—ये तीनों रूप हमारे सूर्य्यजगत्की क्रमोन्नतिमें काम आते हैं; और इन्हीं तीनों रूपोंका मनुष्यकी क्रमोन्नतिमें भी संबन्ध है। यह उन्नति ही ईश्वरका अभिप्राय है और सृष्टिक्रम इसका यन्त्र है।

९—सूर्यदेवके नीचे उसके सात मंत्री हैं जिनको कभी कभी प्रजापति कहते हैं और जो एक गुप्त रीतिसे उसके अंश भी हैं। यदि हम अपनी शारीरिक बनावटसे उपमा देवें तो इन लोकपालोंका सम्बन्ध ईश्वरसे ऐसा है जैसा कि स्नायु-जाल या स्नायुकेंद्रोंका माथेके भेजे * (मस्तिष्क) से। सृष्टिका सब विकाश जो ईश्वरसे निकलता है इन सातोंमेंसे किसी न किसी एकमें होकर आता है।

१०—इनके नीचे बड़े बड़े समूह या कक्षाएं अध्यात्म जीवोंकी हैं जिन्हें हम फरिस्ते या देवता कहते हैं। इस अद्भुत जगत्सृष्टिके अलग २ भागोंमें जो २ काम ये करते हैं वे अभी सब हमारे जाननेमें नहीं आये हैं, परंतु हम देखते हैं कि

* मस्तिष्क=मग़ज़।

उनमेंसे कोई देवता इस जगत्सृष्टिके ढाँचेके बनाने और उसमें जीव प्रकाश करनेसे गाढ़ा सम्बन्ध रखते हैं।

११—यहां हमारे लोकमें एक बड़ा अधिकारी है जो सूर्यदेवका प्रतिनिधि है और हमारी इस पृथ्वीपर जो उन्नति होती है उसपर उसका पूरा अधिकार है। हम उसको इस लोकका सच्चा राजा मान सकते हैं और उसके नीचे मंत्री अलग २ विभागोंके कार्यकर्ता हैं। इन विभागोंमेंसे एक वह है जिसका संबन्ध अलग २ जातिके मनुष्योंकी क्रमोन्नतिसे है, यहांतक कि हर एक बड़ी जातिके लिये एक मुखिया है जो उस जातिकी नींव डालता है और सब दूसरी जातियोंसे उसे विशिष्ट करता है और उसके विकाशकी संभाल करता है। एक दूसरा विभाग धर्म और शिक्षाका है और इसीमेंसे बड़े बड़े प्राचीन समयके शिक्षक आये हैं और इसीमेंसे सब मत निकले हैं। इस विभागका मुख्य अधिकारी जब कभी समझता है कि नये मतकी आवश्यकता है तब एक नया मत स्थापन करनेको या तो आप आजाता है या अपने शिष्योंमेंसे किसी एकको भेज देता है।

१२—इसलिये सब मतोंके आदिरूप (आरम्भ) में सत्यके किसी विशेष अंगका वर्णन हुआ है, परन्तु सत्यका मर्म सदा एक ही रहा है। मत मतांतरोंके आदिरूपोंमें भेद इसलिये हुए हैं कि जिन जातियोंके लिये उनकी उत्पत्ति हुई थीं उनमें परस्पर भेद थे। अनेक मनुष्यजातियोंकी सामाजिक व्यवस्था

और उन्नतिके तारतम्यसे इस बातकी आवश्यकता हुई कि यह एक ही सत्य अलग अलग रूपोंमें दिखलाया जाय। परंतु सत्यका भीतरका अंग सदा एक ही रहा है और वह स्रोत जहांसे यह सत्य निकला है एक ही है, यद्यपि उनके बाहरी रूपोंमें भेद ही नहीं, किन्तु विरोध भी दिखलाई पड़ता है। यह मूर्खता है कि मनुष्य इस बातपर विवाद करें कि कोई एक शिक्षक या कोई एक शिक्षाका रूप दूसरेसे अच्छा है क्योंकि शिक्षक सर्वदा ऋषियोंके बड़े मंडलके भेजे हुए होते हैं और शिक्षा सब बड़ी बड़ी बातोंमें और नीति और सदाचारके सिद्धांतोंमें सदा एक ही रही है।

१३—इस जगत्में ज्ञानकी बातोंका एक संग्रह ऐसा है कि जो इन सब मत-मतांतरोंकी जड़ है और जो जो सृष्टिकी बातें अभीतक मनुष्यके जाननेमें आ चुकी हैं वे सब इसमें मिलती हैं। बाहरी लोकमें मनुष्य अपने अज्ञानके कारण इन बातोंपर सदा झगड़ा और विवाद किया करते हैं कि क्या परमेश्वर है या नहीं; क्या मनुष्य मरनेके पीछे भी जीता रहता है या नहीं; क्या वह विशेष उन्नति कर सकता है या नहीं; और विश्वसे उसका क्या सम्बन्ध है। तर्कशक्तिके उत्पन्न होते ही मनुष्यके मनमें ये प्रश्न सदा बने रहते हैं। ये प्रश्न प्रायः ऐसे समझे जाते हैं कि, इनका उत्तर नहीं दिया जा सकता है, परन्तु ऐसा नहीं है, इनका उत्तर हर कोई दे सकता है, यदि वह इन प्रश्नोंके उत्तर शोधनेकी यथोचित चेष्टा करे। इन बातों-

का ज्ञान ऐसा है कि प्राप्त हो सके और हर कोई चेष्टा करनेसे उसके प्राप्तिका पात्र हो सकता है।

१४—मनुष्यकी उन्नतिकी पहलेकी अवस्थाओंमें ऋषिमण्डलके मुख्य मुख्य अधिकारी बाहरसे अर्थात् सूर्यजगत्के अधिकतर उन्नत शुक्रादि लोकोंसे आते थे, परन्तु यों ही यहां मनुष्य यथोचित कक्षाके बल, बुद्धिकी शिक्षा पा चुकते हैं, तब ही इन पदोंपर वे नियत हो जाते हैं। ऐसे अधिकारके योग्य होनेके लिये मनुष्यको यह आवश्यकता होती है कि वह अपनेको ऊंची कक्षातक पहुंचाये और ऋषि बन जाय अर्थात् ऐसी शक्ति और बुद्धिवाला पुण्यात्मा बन जाय कि वह अन्य मनुष्योंसे शिखरको तरह ऊँचा हो जाय, क्योंकि वह मनुष्यकी साधारण उन्नतिकी चोटीतक पहुंच चुका है उसने वह पद प्राप्त कर लिया है, जो वर्तमान समयके लिये ईश्वरके यहांसे नियत किया गया था। परन्तु उसकी उन्नति इस कक्षासे आगे भी ईश्वरकी कक्षापर पहुंचनेतक जारी रहेगी।

१५—बहुतसे मनुष्योंने ऋषियोंका पद प्राप्त कर लिया है; ये मनुष्य एक देशवासी नहीं हैं, किन्तु जगत्के सब मुख्य मुख्य जातियोंके हैं। ये विरले जीव हैं जिन्होंने दृढ़ साहससे मायाके वेगोंको जीत लिया है और सृष्टिके भीतरी भेदोंको जान लिया है और ऐसा करके ऋषि कहलानेकी योग्यता प्राप्त कर ली है। उनमें कई दरजे और कई कामके विभाग हैं; परन्तु सदा उनमेंसे कुछ ऋषिमंडलके

सभासद बनकर हमारी पृथ्वीके सम्बन्धमें लगे रहते हैं, क्योंकि हमारे जगत्की बातोंका प्रबन्ध और मनुष्यकी आध्यात्मिक उन्नति इसी ऋषि-मंडलके हाथमें रहती है।

१६—इस प्रतिष्ठित समाजको बहुधा बड़ा श्वेत-मंडल कहते हैं, परन्तु इसके सभासद किसी एक स्थानपर सबके सब इकट्ठे नहीं रहते हैं। उनमेंसे हर एक प्रायः संसारसे अपनेको अलग कर लेता है और इन सबको दूसरेके और अपने मंडलके प्रधान महर्षिके समाचार निरन्तर मिलते रहते हैं, परन्तु सूक्ष्म शक्तियोंका ज्ञान उनको इतना अधिक है कि यह संसर्ग इनको दूर रहते हुए भी बना रहता है। प्रायः तो वे अपने अपने देशोंहीमें बने रहते हैं और वे लोग जो इनके पास रहते हैं उनको उनकी शक्तियोंका भरम भी नहीं होता। कोई मनुष्य जो चाहे इनका ध्यान अपनी ओर खींच सकता है, परन्तु यह जब हो सकता है कि वह इस कृपाका पात्र बने। यह शंका किसीको नहीं होनी चाहिये कि उसके सत्कर्म महात्माओंकी दृष्टिमें आनेसे रह जायंगे। ऐसा दृष्टिदोष होना असंभव है, क्योंकि जो मनुष्य इस रीतिकी सेवामें लगता है वह मनुष्यमात्रमें ऐसा प्रतिष्ठित दिखलाई पड़ता है जैसे कि अंधेरी रातमें अग्निकी बड़ी ज्वाला। इन बड़े लोकोपकारक महात्माओंमेंसे कोई कोई ऐसे लोगोंको अपने शिष्य बनाना स्वीकार कर लेते हैं कि जिन्होंने मनुष्यजातिकी सेवामें अपनेको समर्पण कर

देनेका प्रण कर लिया हो; ऐसे महात्माऋषि, गुरुदेव कहलाते हैं।

१७—इन शिष्योंमेंसे एक हेलेना पेट्रोवना ब्लैवाट्स्की थीं, एक उत्तम जीवात्मा जो अनुमान पैंतीस वर्ष हुए लोकमें ज्ञान देनेके लिये भेजी गई थीं। कर्नल हेन्री स्टील आलकट साहबके साथ इन्होंने इस ज्ञानके फैलानेको जो कि उन्हें मिला था, ब्रह्म-विद्या-सभा Theosophical Society की नींव डाली। जिन लोगोंका पहलेके दिनोंमें इनसे मेल हुआ उनमें एक ए. पी. सिनेट साहब, पायोनियर समाचार पत्रके सम्पादक भी थे और इन्होंने अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे तत्काल ही यह समझ लिया कि मैडम ब्लैवाट्स्कीको शिक्षा बड़े गौरव और महत्त्वकी है। यद्यपि मैडम साहबा इससे पहले अध्यात्म रहस्य प्रकाश (आइसिस अन्वेल्ड) नामी पुस्तक लिख चुकी थीं, परन्तु उसकी ओर लोगोंका ध्यान बहुत नहीं गया था और यह सिनेट साहबका ही काम था कि सबसे पहले यह शिक्षा पश्चिम देशके पढ़नेवालोंको उनकी दो पुस्तकोंसे मिली। ये दो पुस्तकें गुप्त जगत् (आकल्टवर्ल्ड) और बौध मत मर्म (ऐसाटरिक बुद्धिज्म) हैं।

१८—इन पुस्तकोंसे ही मुझे पहले इनके लेखक और फिर स्वयं मैडम ब्लैवाट्स्कीसे मिलनेका अवसर मिला; उन दोनोंसे मैंने बहुत कुछ सीखा। जब मैंने मैडम ब्लैवाट्स्कीसे पूछा कि इससे अधिक कैसे सीखनेमें आसकता है और जो

मार्ग कि उन्होंने मुझे बताया था उसपर सच्ची उन्नति कैसे हो सकती है। उन्होंने मुझे कहा कि जिस तरह वे स्वयं शिष्यपनेमें स्वीकार कर ली गई थीं उसी तरह यह सम्भव है कि गुरुदेव महात्मा और विद्यार्थियोंको भी शिष्य बनाना स्वीकार कर लें, परन्तु कोई मनुष्य स्वीकार जब ही हो सकता है कि वह तत्परता और परोपकारी कामसे अपनी योग्यता दिखला देवे। उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि इस पदपर पहुँचनेके लिये मनुष्यको अपनी इरादेमें पूरी दृढ़ता रखनी होती है। उन्होंने यह भी कहा कि दाम और राम (ईश्वर) या दीन और दुनियां दोनोंकी एक साथ सेवा करनेंसे सफलता नहीं हो सक्ती। इन गुरुदेवोंमेंसे एकने ऐसा कहा है कि परलोक सिद्ध होनेके लिये शिष्यको चाहिये कि वह अपना लोक छोड़कर हमारेमें आवे।

१९—इसका अर्थ यह है कि शिष्यको यह चाहिये कि वह उन बहुतसे संसारी मनुष्योंको छोड़ दे जो केवल धन और बलकी लालसा रखनेवाले हैं और उन लोगोंकी छोटीसी टोली-में मिल जायं जिन्हें ऐसी वस्तुओंकी चाह कुछ भी नहीं है, किंतु जिनके जीवनका प्रयोजन ही यह है कि वे संसारकी भलाईमें निस्स्वार्थ लग जायं। मैडम ब्लैवाट्स्कीने हमें भलीभांति चेता दिया कि इस मार्गपर चलना कठिन है और यह कि संसारी लोग हमारा भ्रम और ठठ्ठा करेंगे और इस मार्गमें कठिनाईके बिना और किसी वस्तुकी आशा नहीं की जा

सकती और यह भी कहा कि यह तो निश्चय है कि सफलता होगी पर यह कोई नहीं पहलेसे कह सकता कि इसमें कितना समय लगेगा। हममेंसे कोई कोईने इन बातोंको प्रसन्नतासे स्वीकार कर लिया है और ऐसा कोई अवसर नहीं आया कि इससे हमें पछताना पड़ा हो।

२०—कई वर्ष काम करनेपर मुझे इन बड़े गुरुदेवोंसे मिलनेका सन्मान प्राप्त हुआ। उनसे मैंने बहुतसी बातें सीखी हैं, जिनमेंसे एक यह है कि जो शिक्षाएं उन्होंने दी हैं, उनमेंसे बहुतसीका मैं साक्षात् अनुभव कर लेता हूं। इसलिये इस विषयमें जो कुछ मैं लिखता हूँ वह मेरा जाना हुआ और अपने आप देखा हुआ है। इन शिक्षाओंमें कोई कोई बातें ऐसी हैं जिनके साक्षात् करनेमें ऐसी शक्तियां चाहने पड़ती हैं कि जो मेरी गमसे बहुत बाहर हैं, परन्तु इनके लिये केवल इतना मैं कह सकता हूँ कि जो कुछ मैं अब साक्षात् जानता हूं उसमें और इनमें विरोध नहीं है और प्रायः ये बातें ऐसी हैं कि जो कुछ मैंने साक्षात् देख लिया है उसके समाधान करनेके लिये इनको मान लेना पड़ता है। ये बातें ब्रह्मविद्याके दूसरे और सब सिद्धान्तोंके साथ मैं इन गुरुदेवोंके वचनपर ही मानता हूं। तबसे मैंने, जो कुछ मुझे बतलाया गया था उसमेंसे और भी अधिक बातोंका साक्षात् निर्णय कर लेना सीख लिया है और यह निश्चय हो गया है कि जो बातें मुझे बतलाई गईं थीं हर एक पहलूसे ठीक हैं। इसलिये

ऐसी कल्पना करनेमें दोष नहीं है कि जब मैं जांच करने योग्य हो जाऊंगा तब वे दूसरी बातें भी जिनकी मैं अभी तक साक्षात् जांच नहीं कर सका हूं ठीक निकलेंगी।

२१–ब्रह्मविद्या के उत्साही अभिलाषीका यह प्रयोजन हुआ करता है कि उसे किसी गुरुदेवके चेला होनेको उम्मेदवारीमें स्वीकार हो जानेका मान प्राप्त हो जाय। परन्तु इसके लिये दृढ़ उद्योग करना पड़ता है। ऐसे कोई न कोई लोग सदा रहे हैं कि जो ऐसे उद्योग करनेको तत्पर थे और इसलिये सदा कोई न कोई लोग ज्ञानी बनते चले आये हैं। यह ज्ञान ऐसा परमोत्तम है कि जो कोई इसे पूरा प्राप्त कर लेता है वह मनुष्यके पदसे ऊंचा निकल जाता है और हमारे ज्ञानकी सीमासे बाहर हो जाता है।

२२–परन्तु इस ज्ञानकी पाठशालामें कई कक्षाएं हैं और वे लोग जो अब भी सीख रहे हैं उनसे भी हम अगर चाहें तो बहुत कुछ सीख सकते हैं; क्योंकि मनुष्यमात्र क्रमोन्नतिकी निसैनीके किसी न किसी डंडेपर खड़े हैं। जंगली मनुष्य उस निसैनीकी तलीपर हैं और हम सभ्य लोग उसपर थोड़ा बहुत चढ़ चुके हैं। परन्तु हम पीछेको मुड़कर नीचेके डंडोंको देख सकते हैं; ऐसे ही यह भी हो सकता है कि हम ऊपरको आंख उठाकर अपने ऊपर बहुतसे डंडे देख लें जिन-पर कि हम अभी नहीं पहुंच पाये हैं। जैसे हमसे नीचे हर एक डंडेपर अब भी लोग खड़े हैं जिससे कि हमको दिखलाई

पड़ जाता है कि कौन कौनसे दरजोंमें होकर मनुष्य ऊपर चढ़ा है, ठीक वैसे ही हमारे ऊपर भी हर एक डंडेपर मनुष्य खड़े हैं और इनको देखकर हम यह अनुमान कर सकते हैं कि मनुष्य आगे किस प्रकार चढ़ेगा। यह निसैनी इतनी ऊंची गई है कि उसकी महिमा नहीं कही जा सकती है और हमें यह भी दिखलाई पड़ता है कि इसकी हर एक पंक्तिपर मनुष्य हैं इससे हमको अनुमान होता है कि हमारे लिये भी यह सम्भव है कि हम भी उस महिमाकी ऊंचाई तक चढ़ जायं। वे महात्मा जो हमसे बहुत ऊंचेपर खड़े हैं और इतने ऊंचे हैं कि वे हमको अपने अद्भुत ज्ञान और बलसे देवतासे जान पड़ते हैं, हमें यह बतलाते हैं कि वे आप भी, बहुत समय नहीं हुआ यहां ही खड़े थे जहां अब हम हैं और वे हमें यह भी बतलाते हैं कि हमारे और उनके बीचमें कौन कौनसी पंक्तियां हैं और हमको भी इन पंक्तियोंपर चढ़ना पड़ेगा, अगर हम उन जैसे होना चाहें।



अध्याय तीसरा ।

-+o*o+-

सूर्य्य जगत्की रचना

अगर यह मान लिया जाय कि विश्वका कभी आरम्भ हुआ, तो भी हम यह नहीं जान सकते कि आरम्भ कब हुआ। यदि हम पुरानेसे पुराने समयको भी देखें तो भी पुरुष और प्रकृति (जड़ और चेतन) प्राण और रूप इन विपरीतों (द्वन्द्व) का जोड़ा प्रचंड अवस्थामें पाया जाता है। हमें यह दिखलाई पड़ता है कि द्रव्य (माद्दा) अर्थात् जड़ पदार्थकी सामग्रीका जो साधारण अर्थ किया जाता है उसमें हेर फेर करनेकी जरूरत है, क्योंकि साधारण बोलीमें जिनको बल और जड़ द्रव्य कहते हैं वे दोनों असलमें प्राणके भेद हैं, परंतु क्रमोन्नतिमें ये हैं अलग अलग अवस्थाओंमें और असल द्रव्य (मूल प्रकृति) जो हरएक पदार्थका आधार है वह पीछेको छिपा हुआ अपरिचित पड़ा है। एक फ्रान्स देशके पदार्थ विद्यावालेने हालमें ही यों कहा है कि "जड़ द्रव्य कोई वस्तु नहीं है, आकाश वायुमें केवल छेद ही छेद हैं और कुछ नहीं है।" प्रोफेसर आसबर्न रैनल्डज़ साहबका जो प्रसिद्ध सिद्धान्त है उससे भी यह वचन मिलता है। दिव्य शक्तियोंसे निर्णय करनेसे भी यह बात सच्ची जान

पड़ती है और इस रीतिसे उस बातका निरूपण होता है जो कि पूर्वकी पवित्र पुस्तकोंमें लिखी है अर्थात् यह कि प्रकृति अथवा जड़द्रव्य माया वा भ्रम है।

२—अंतिम मूल प्रकृति जैसी कि यहांसे देखनेसे दिखलाई पड़ती है वह वस्तु है जिसको पदार्थविज्ञानी लोग आकाश वायु* कहते हैं। इस आकाश वायुसे भरी हुई शून्य (आकाशकी पोल) हमारी स्थूल इंद्रियोंको रीती (खाली) दिखाई पड़ती है तथापि असलमें यह आकाश वायु इतनी गाढ़ी है कि इससे अधिक गाढ़ी और कोई वस्तु विचारमें भी नहीं आ सक्ती। प्रोफेसर रैनल्डज साहबने निरूपण किया है कि इसका† गाढ़ापन (घनत्त्व) पानीके गाढ़ेपनसे दस हजार गुणा अधिक है और उसका सामान्य दबाव एक वर्ग इञ्चपर साढ़े सात लाख टन अर्थात् दो करोड़ चार लाख मन है।

३—यह आकाश वायु केवल ऊंची कक्षाकी दिव्य दृष्टिसे ही जाननेमें आ सक्ती है। हमें स्वयं तो इसकी निश्चय नहीं है, परन्तु ऐसा एक समय मानना पड़ेगा कि जब शून्य आकाशमें सारी पोल इस आकाश वायुसे भरी हुई थी। हमें यह भी मानना पड़ेगा कि किसी बड़े पुरुषने (जो कि हमारे सूर्य-

* इसको Koilon काइलान भी कहते हैं।

† अपनी हवाका दबाव १४. ७ पाउण्ड अर्थात् अनुमान ७॥ सेरका है और इस हिसाबसे आकाश वायुका सामान्य दबाव अपनी हवाके दबावकी अपेक्षा ग्यारह करोड़ बयालीस लाख, पच्चासी हजार सात सौ चौदह (११,४२,८५,७१४) गुना है।

जगत्का ईश्वर नहीं था, वरन् इससे अनुमानसे इतना ऊंचा था कि जिसकी सीमा नहीं) इस पदार्थके किसी ऐसे खंडमें जो एक विश्वकी लम्बाई चौड़ाईसे भी बड़ा है अपनी आत्मा या शक्ति डालकर उसकी शान्त अवस्थाको बदल दिया। इस शक्तिके डालनेसे वैसा ही फल हुआ जैसे बड़े वेग-के श्वासके फूंकनेसे होता है, अर्थात् उससे इस आकाश वायुमें अनगिनत नन्हे नन्हे गोल बुदबुदे बन गये और येही बुदबुदे अन्तिम परमाणु हैं कि जिनसे हमारे जड़ पदार्थकी सामग्री बनी है, ये परमाणु रसायन विद्याके अणु नहीं हैं और न भूलोकके अन्तिम परमाणु हैं। ये बुदबुदे इस लोकसे बहुत ऊँची सूक्ष्म कक्षाके हैं और जिनको कि हम साधारण बोलीमें अणु कहते हैं वे हरएक ऐसे बहुत २ से बुदबुदोंकी पोटलियां हैं और इसका आगे वर्णन किया जावेगा।

४—जब कि हमारे सूर्य्य-जगत्का ईश्वर अपने जगत्को बनाने लगता है तब उसको यह सामग्री तय्यार मिलती है अर्थात् उन नन्हे नन्हे बुदबुदोंका अनन्त ढेर जिससे कि हमारे भांति भांतिके जड़ पदार्थ बन सकते हैं। ईश्वर पहले पहल आकाशमें अपनी अधिकार भूमिकी सीमा बांधता है यह भूमि एक बड़े गोले (ब्रह्माण्ड) के आकारकी होती है जिसकी परिधि फैलावमें इतनी अधिक होती है कि इस जगत्में जो आगे ग्रह बनेंगे उनमेंसे दूरसे दूरके ग्रहके घूमनेका मार्ग भी भली-भांति इसके भीतर समा जाय। उस गोलेके भीतर ईश्वर

एक प्रकारका अत्यन्त बड़ा भँवर डाल देता है, अर्थात् उस बुदबुदोंके ढेरको ऐसा चला देता है कि जिससे सब बुदबुदे बीचमें सिमटकर एक बड़ी ढेरीमें इकट्ठे हो जाते हैं और आगे समयमें इस सामग्रीसे बादलरूपी आकाररहित सृष्टि (nebula) बनेगी।

५—इस बड़े घूमते हुए गोलेमें वह लगातार धक्के देता है जिससे बुदबुदे अधिकसे अधिक मिश्रित ढेरियोंमें इकट्ठे होते जाते हैं और इससे उतार चढ़ावके गाढ़ेपनके अणुओंके सात लोक बन जाते हैं जो एक ही स्थानमें एक केन्द्रपर एक दूसरेके भीतर धसे हुए (प्रविष्ट) होते हैं।

६—यों अपने तीसरे स्वरूप ब्रह्मासे वह इस विशाल गोलेमें पहला धक्का देता है इससे उस गोले भरमें बहुतसे नन्हे नन्हे भंवर बन जाते हैं। ऐसा हरएक भंवर उनंचास उनंचास बुदबुदे खींच लेता है उनको नियमित रूपमें रच देता है। इन बुदबुदोंकी छोटी छोटी रचनाएं (झुंड) दूसरे लोकके लिये अणु * बन जाते हैं। सबके सब बुदबुदे इस प्रकार रचनामें काम नहीं आजाते, वरन् सबसे ऊँचे अथवा पहले लोकके अणुओंका काम देनेके लिये जितने चाहिये, उतने बुदबुदे फुटकर छोड़ दिये जाते हैं। समय आनेपर दूसरा धक्का या झोंका लगता है जिससे इन उनंचास बुदबुदे वाले अणुओंमें थोड़ेसे छोड़कर और सब अणु पहले भीतर

* अणु=जर्रा।

खिंच जाते हैं और फिर बाहर फेंक दिये जाते हैं, जिससे कि उनमें नये सिरसे भँवर पड़ जाते हैं। इन नये भँवरोंमें हर-एकमें (४९२) अर्थात् ४९ × ४९ अथवा २४०१ बुदबुदे आजाते हैं। ये तीसरे लोकके लिये अणु बन जाते हैं और जो थोड़ेसे उनंचास बुदबुदेवाले अणु फुटकर छूट गये थे, वे इतने थे कि उनसे दूसरे लोकके अणुओंका काम चल जावे। फिर थोड़े समयके पीछे तीसरा झोंका आता है जिसके लगनेसे (४९२) ४९ × ४९ अथवा २४०१ बुदबुदेवाले अणु प्रायः सबके सब बिखर कर अपने असली रूपमें ही आजाते हैं और फिर (४९३) ४९ × ४९ × ४९ अर्थात् ११७६४९ बुदबुदोंका एक एक अणु बन जाता है और ये चौथे लोकके अणु हैं। इसी प्रकार बार बार बिखरकर बनना हर एक झोंकेपर होता है, यहांतक कि इन लगातार झोंकोंमेंसे चौथे झोंकेमें पांचवें लोकमें (४९४) यानी ५७६४८०१ बुदबुदोंका एक अणु बनता है और छठे लोकमें पांचवें झोंकेसे (४९५) या २८२४७५२४९ बुदबुदोंका एक २ अणु छठे लोकका बनता है और छठे झोकेमें ४९६ अर्थात् १३८४१२८७२०१ असली बुदबुदोंका एक एक अणु सातवें अर्थात् सबसे नीचे लोकका बन जाता है।

७—यह सातवें लोकका अणु भूलोकका अन्तिम (सूक्ष्मसे सूक्ष्म) अणु हैं। यह वह अणु नहीं है जिनको रसायन विद्यावाले अणु कहते हैं। किन्तु यह वे अन्तिम कक्षाके सूक्ष्म अणु हैं कि आपसमें मिल मिलकर रसायन विद्यावालोंके

अणु बनाते हैं। अब हम उस व्यवस्थातक पहुंच गये हैं कि इस बड़े भँवर खाते हुए गोलेके भीतर सात भांतिके द्रव्य या सात भांतिके पदार्थोंकी सामग्री *बन गई है। ये सातों मूलमें एक ही हैं, क्योंकि ये सब एक ही भांतिके बुदबुदोंसे बने हुए हैं, परन्तु इनमें भेद यह है कि कोई अधिक घने अथवा गाढ़े हैं और कोई कम। ये सब सातों प्रकारके द्रव्य एक दूसरेके भीतर भलीभाँति मिले हुए हैं, इसलिये गोलेके भीतर चाहे जहांसे कुछ भाग गोलेका लिया जाय, उसमें हर भांतिके द्रव्यके नमूने मिलेंगे, केवल इतना अन्तर रहेगा कि जैसे जैसे भारी अणु होंगे वे केन्द्रकी ओर अधिक अधिक मिलते जावेंगे।

८—ईश्वरके तीसरे स्वरूप (ब्रह्मा) का सातवां धक्का लगनेपर भूलोकके अणु जो कि पहले पिछली बार बन चुके थे अब अपने असली फुटकर बुदबुदोंमें नहीं बिखरते, किन्तु कई कई इकट्ठे होकर ढेरियां बन जाती हैं और इस प्रकार भांति भांतिके द्रव्य बन जाते हैं कि जो रसायन विद्याके तत्त्वोंके पूर्वरूप हैं और इनसे आपसमें जुड़ जुड़ कर भांति भांतिके रूप बनते हैं जिन्हें पदार्थविद्यावाले रसायनके तत्त्व कहते हैं। इनके बननेमें जुगके जुग लग जाते हैं और इनका बनना एक नियमित क्रमसे और कई शक्तियोंके लगनेसे होता है जैसा कि सर विलियम क्रुक साहबने अपने उस लेखमें जो तत्त्वोंकी उत्पत्तिपर (दी जीनिसिस आफ दी एलिमेन्ट्स) है उसमें

* तत्त्वोंकी उत्पत्ति।

ठीक दर्शाया है। सचतो यह है कि इनके बनानेकी क्रिया अब भी समाप्त नहीं हुई है; हमारी जानमें "युरेनियम धातु" ऐसा तत्त्व है कि जो सबसे पीछे बन पाया है और जो सब तत्वोंसे भारी है; परंतु अधिक पेचदार बनावटके तत्त्व शायद आगे और भी बन जावें।

९—जैसे जैसे समय निकलता गया गाढ़ापन बढ़ता गया और फिर वह अवसर आगया कि बड़े चमकीले बादलोंका-सा मंडल mebula बन गया। यह बराबर तेजीसे घूमता रहा और जैसे जैसे यह ठंडा होता गया चपटा होकर उसका बड़ा चाकसा बन गया और धीरे धीरे फटकर उसके एकके भीतर एक छल्लेसे बन गये और उनके बीचमें नाभीसी रह गई, यह रचना जैसे आजकल शनिश्चर ग्रह दिखलाई पड़ता है उससे मिलती हुई थी, परंतु थी उससे बहुत बड़ी क्रमोन्नतिके लिये ग्रहोंसे काम लेनेका समय जब नगीच आगया तब ईश्वरने हर एक छल्लेके दलमें किसी ठौर एक छोटा भंवर डाला जिसमें उस छल्लेका बहुत कुछ भाग (माद्दा) धीरे २ इकट्ठा होगया। ये टुकड़े जो इकट्ठे हुए, आपसमें टकराने लगे जिससे गरमी फिर पैदा हो गई और जो ग्रह उनसे बना वह बहुत समय तक दहकता हुआ वायुका पहाड़सा बना रहा। धीरे धीरे वह फिर ठंडा हुआ यहांतक कि; वह ऐसा हो गया कि उसमें हमारे जैसे प्राण रह सकें। इस रीतिसे सब ग्रह बने थे।

१०—जैसा कि, ऊपर कह चुके हैं ये लोक आपसमें एकके

भीतर एक पैठे हुए हैं; इन लोकोंकी सामग्री लगभग सब इस समय तक इकट्ठी होचुकी थी और उससे नए ग्रह-मंडल बन चुके थे। हरएक ग्रहमंडल इन सब भांत भांतकी सामग्रियोंसे बनाया गया था और येही सामग्रियां (द्रव्य) अब भी हर एकमें हैं। यह पृथ्वी जिसपर कि हम रहते हैं केवल स्थूल पदार्थोंका ही एक बड़ा गोला नहीं है अर्थात् इसमें केवल सबसे स्थूल और नीचे लोकके ही अणु नहीं हैं किन्तु इसके साथ छठे, पांचवें, चौथे और अन्य लोकोंके भी बहुतसे अणु लगे हुए हैं। पदार्थ विज्ञानके अभ्यासी यह बात भलीभांति जानते हैं कि कड़ेसे कड़े पदार्थोंमें भी कण कभी आपसमें एक दूसरेसे छुए हुए नहीं हैं। यहां तक कि इन कणोंके बीचमें इतनी २ ठौर सदा छुटी रहती है कि उस खाली ठौरकी अपेक्षा (सामने) कणोंका आकार अत्यन्त छोटा होता है। किसी गाढ़े पदार्थके कणोंके बीचमें यों इतना २ खाली जगह रहती है कि उसमें सब दूसरे लोकोंके सूक्ष्मतर (हलके) सब भांतके कण पड़े ही नहीं रह सकते हैं किन्तु उनके बीचमें और उनके चारों ओर भलीभांत फिर सकते हैं। इसलिये यह भूगोल जिसपर हम रहते हैं एक लोक नहीं है। किन्तु सात एक दूसरेके भीतर पैठे हुए लोक हैं जो सब एकही ठौरमें हैं केवल भेद इतना ही है कि केन्द्रसे स्थूल पदार्थोंकी अपेक्षा सूक्ष्म पदार्थोंके अणु (वायु मंडल) चारों ओर अधिक दूर तक फैले हुए हैं।

११—हमने इन एक दूसरेमें पैठे हुए लोकोंके अलग अलग नाम रख दिये कि जिससे इनकी बात करनेमें सुभीता रहे। पहले लोकके लिये कोई नाम नहीं चाहिये क्योंकि मनुष्यका उससे अभी सीधा सम्बन्ध नहीं हुआ है; परन्तु जब उसकी बात करनेकी जरूरत पड़े तो उसको ब्रह्मलोक (आदि लोक) कह सकते हैं, दूसरे लोकको अनुपादक लोक कहते हैं क्योंकि इस लोकमें ब्रह्मके तेजकी वे चिनगारियां हैं जिनको मानुषी जीवात्मा कहते हैं। परन्तु ऊंचीसे ऊंची जो दिव्य दृष्टि अभी हो सकती है उससे ये दोनों लोक अभी परे हैं। तीसरा लोक (वायु मंडल) जिसके हर एक अणुमें २४०१ बुदबुदे होते हैं, आत्माका लोक कहलाता है क्योंकि मनुष्यमें अभी जो ऊंचेसे ऊंची आत्मा है वह इस लोकमें काम करती है। चौथे लोकका नाम बुद्धि लोक है क्योंकि उससे अन्तर ज्ञानकी ऊंचीसे ऊंची लहरें आती हैं। पांचवाँ मनलोक (स्वर्गलोक) कहलाता है क्योंकि इस लोककी सामग्री (पदार्थ) से ही मनुष्यका मन बनता है। छठेका नाम वासना या अंतरिक्ष लोक है क्योंकि मनुष्यके रागद्वेषोंसे इस लोकके अणुओंमें लहरें (कंपन) पैदा होती हैं, इस लोकका नाम बिचले समयके रसायनवालोंने तारागणका लोक रक्खा था क्योंकि स्थूल लोकके देखते इसके पदार्थके अणु तारासे या चमकते हुए होते हैं। सातवां लोक उस भांतके पदार्थोंका बना हुआ है कि जिसको हम अपने चारों ओर देखते हैं, और इस लोकको स्थूल या भूलोक कहते हैं।

१२-वह पदार्थ (सामग्री) कि जिससे ये सब एक दूसरेमें पैठे हुए लोक बने हुए हैं, असलमें एक ही है परन्तु उसमें अणुओंकी रचनामें भेद है और किसीमें अणु अधिक घने हैं और किसीमें कम। इसलिये इन भांत २ के पदार्थोंमें कंपन जुदी जुदी रीतिका होता है। ये भांत २ के कम्पन (लहरें) उतार चढ़ावके ऐसे होते हैं कि मानो इनका कई सप्तकोंका एक बड़ा सरगम है। स्थूल पदार्थमें इस सप्तकमेंसे नीचेके अर्थात् सबसे उतरे हुए कुछ सप्तक निकलते हैं। वासना लोकके पदार्थमें इन सप्तकोंसे ऊपरके कुछ सप्तक और मनलोकके पदार्थमें कुछ सप्तक उनसे भी ऊंचे निकलते हैं इसी रीतिसे ऊपरके और भी समझ लिये जावें।

१३—इन लोकोंमेंसे हरएक लोकके अलग अलग ढंगके अणु और अणुओंकी अलग अलग ढङ्गकी रचनाएँ हैं, और ये रचनाएँ अपने अपने लोकोंकी मानों पदार्थ हैं। हरएक लोकोंमें इन पदार्थोंके सात २ विभाग हैं, और ये विभाग कणोंके कंपनोंके भेदोंपर रखे गये हैं। यह तो पहले वर्णन हो चुका है कि किसी लोकके एक उपविभागका कण उसके ऊपरके उपविभागके कई कणोंके एक विशेष रीतिसे मिलनेसे बनता है। ये कण ऊपरके उपविभागके कणसे बड़ा होता है। और सदा तो नहीं, परन्तु बहुधा यह देखा गया है कि जितना बड़ा कण होता है उसका कंपन उतना ही धीमा होता है। गरम करनेसे कणोंका आकार बढ़ जाता है और उनके

कंपन (लहरों) की गति तेज और उसकी लपक बड़ी हो जाती है जिससे कि वे कण अधिक ठौर घेर लेते हैं, और उन कणोंसे बना हुआ पदार्थ फूल जाता है, यहांतक कि फूलते फूलते वह अवस्था आ जाती है कि कणोंकी रचना बिखर जाती है और इससे कण अपनी पहलेकी अवस्थासे उसके ऊपरकी सूक्ष्मतर अवस्थामें आ जाता है। भूलोकमें कण घने पनमें उतार चढ़ावसे सात भांतके हैं, और ये ही भूलोकके सात विभाग क्रम क्रमसे बन जाते हैं और इनके नाम नीचेसे ऊपर गिननेपर हम ये रखते हैं पृथ्वी (ठोस) जल (द्रव) वायु, आकाश (ether) या प्राण वायु, महाकाश (Superether), पराकाश, (Subatomic) और परमाकाश (atomic)।

१४—परमाकाश वह उपविभाग है जिसमें सब वस्तुएँ भूलोकके अमिश्रित अणुओंसे बनाई गई हैं, परन्तु इन अणुओंके पहलेसे इकट्ठे कर २ के कोई कण या कणसमूह नहीं बनाये गये हैं। यदि हम भूलोकके सबसे छोटे अणुको ईंटकी उपमा देवें और परमाकाशमें कोई वस्तु या आकार बनाना चाहें तो ईंटें इकट्ठी करके उनसे आकार बनाना होगा। दूसरे उपविभाग अर्थात् पराकाशमें यदि पदार्थ बनाना चाहें तो कुछ ईंटें (अणु) पहले इकट्ठी की जावेंगी और चार २ पाँच २ छः २ या सात २ ईंटें जुड़कर सिलें बना ली जावेंगी और उन सिलोंसे घर बनाये जावेंगे। पराकाशकी कई सिलें जुड़कर यदि विशेष

आकार बना दिया जावे तो तीसरा उपविभाग अर्थात् महा-काश बनानेकी सामग्री बन जायगी। इसी प्रकार सबसे नीचे उपविभाग (ठोस) तक बनते चले जावेंगे।

१५—किसी वस्तुका ठोससे द्रव कर देना अर्थात् पिघला देना उसके कणोंके कंपनको इतना बढ़ा देना है कि अन्तमें कण बिखर बिखर कर असली अणु या छोटे कण रह जावें कि जिनसे वे कण बने थे। यह क्रिया क्रमसे बार २ की जासक्ती है, यहाँ तक कि अंतमें हरएक भौतिक (भूलोककी) वस्तु भूलोकके अंतिम अणुओंमें घट सक्ती है। इन लोकोंमेंसे हर एक लोकके अलग २ निवासी हैं, और इन निवासियोंकी इंद्रि-योंको साधारण दशामें अपने २ ही लोककी लहरों (कंपनों) का ज्ञान हो सक्ता है। हम सब भूलोकमें रहते हैं, और हम जो इस लोकमें देखते सुनते हैं ये और इन्द्रियोंसे ज्ञान हासिल करते हैं वह हमको हमारे चारों ओर जो भूलोकके पदार्थ हैं उनके कंपनों द्वारा होता है। भूलोककी तरह हमारे चारों ओर वासना लोक (भुवर्लोक) मनलोक (स्वर्गलोक) और और भी लोक हैं जो हमारे स्थूललोकमें पैठे हुए हैं, परन्तु हमको साधारण दशामें उनका ज्ञान नहीं होता है क्योंकि उन लोकोंके पदार्थोंके कंपन (लहरें) हमारी इन्द्रियोंको नहीं लगते हैं। यह बात ठीक ऐसी ही है जैसे कि हमारी स्थूल आंखें इन्द्र-धनुषके सात रंग (लाल, नारंगी, पीला, हरा, अस्मानी, नीला, और सोसनी) तो देख सक्ती हैं परन्तु इन्द्रधनुषके किनारेपर

सोसनी रंगके आगे और भी रङ्ग हैं जिन्हें पदार्थ विज्ञानियोंने निश्चय कर लिया है और जिन्हें दिव्य दृष्टिवाले देख सके हैं किंतु हमारी स्थूल आंखोंसे वे नहीं दिखलाई पड़ते हैं। भूलोकका कोई जीव आकाशमें जिस ठौर खड़ा हो उस ठौरमें सम्भव है कि कोई वासना लोकका जीव भी खड़ा हो, परन्तु इनको एक दूसरेका कुछ भी बोध न होगा और न चलने फिरनेमें एकसे दूसरेकी रोक होगी। यही व्यवस्था और लोकोंकी भी है। हम इस क्षण भी इन सूक्ष्म अणुओंके लोकोंसे घिरे हुए हैं और ये लोक हमारे इतने नगीच हैं जितना कि यह स्थूललोक है और उन लोकोंके निवासी हमारे आर पार और आस पास फिर रहे हैं, परन्तु हमको उनका कुछ भी भान नहीं होता है।

१६—हमारी क्रमोन्नतिका मंझ आजकल हमारे इस गोल पर है जिसे हम पृथ्वी कहते हैं इसलिये केवल इस पृथ्वाके सम्बन्धमें ही अब आगे हम इन ऊंचे लोकोंका वर्णन करेंगे, और आगे जब २ भुवर्लोक या वासनालोकका शब्द काममें आवे तो उससे केवल हमारे पृथ्वीके भुवर्लोकका अभिप्राय होगा, न कि (पहलेकी भाँति) संपूर्ण सूर्य जगत्के भुवर्लोकका। हमारे पृथ्वीका भुवर्लोक भी एक गोला या मंडल है जो कि भुवर्लोकके सूक्ष्म अणुओंका बना हुआ है। यह भुवर्लोक आकाशमें उसी ठौरमें है जिसमें कि हमारी पृथ्वीका स्थूल गोला है, परन्तु इसके अणु बहुत ही हल्के हैं, यह

हमारे चारों ओर हमारे वायुमंडलसे बाहर अत्यन्त दूरी तक आकाशमें चारों ओर फैला हुआ है। यहां तक कि यह प्रायः चन्द्रमातक फैला हुआ है। चन्द्रमा पृथ्वीके चारों ओर घूमते घूमते पृथ्वीके कभी नगीच आजाता है और कभी दूर। चन्द्रमाकी पृथ्वीसे मध्यम दूरी लगभग दो लाख चालीस हजार मीलकी है और जब चन्द्रमा घूमते २ पृथ्वीके बहुत ही नगीच आजाता है तब तो उसका भुवर्लोक पृथ्वीके भुवर्लोकसे मिल जाता है, परन्तु जब चन्द्रमा घूमते २ पृथ्वीसे अत्यन्त दूर हो जाता है तब पृथ्वी और चन्द्रमाके भुवर्लोकोंके बीचमें अंतर रह जाता है। हम मनलोकका शब्द उस और भी बड़े मंडलके लिये काममें लावेंगे जो मानसिक अणुओंसे बना है और जिसके बीचमें हमारी स्थूल पृथ्वी है। इसी प्रकार और भी ऊंचे अर्थात् सूक्ष्मतर गोले या लोक हमारी पृथ्वीके हैं जो इतने २ फैलावके हैं कि हमारे सूर्य्यजगत्के वृहस्पति, शुक्र, आदि दूसरे ग्रहोंके सूक्ष्म लोकोंसे भी छू जाते हैं। ये हमारे सूक्ष्म लोक इतने फैलावके हैं तो भी उनके अणु हमारे इस स्थूल पृथ्वीके थलपर हमारे चारों ओर यहां ऐसेही घिरे हुए हैं जैसे कि दूसरे लोकोंके अणु।

१७—ये सब सूक्ष्म अणुवाले गोले हमारे (हमारी पृथ्वी भुवन के) अङ्ग हैं और वे अपने स्थूल अङ्ग अर्थात् इस स्थूल पृथ्वीके साथ साथ सूरजके चारों ओर घूम रहे हैं। अभ्यासीको चाहिये कि जब पृथ्वीकी बात चले तो वह सहज

ही समझ ले कि इसका अभिप्राय इन सब एक दूसरेमें पैठे हुए लोकोंके इकट्ठे पिण्ड (भुवन) से है न कि इस छोटी-सी स्थूल गोली पृथ्वीसे जो कि इस पिण्डके बीचोंबीच बिन्दुसी है।



अध्याय चौथा ।

प्राणका विकाश ।

ये सब ऊपर वर्णन किये हुए प्राणके वेग जिनसे ये एक दूसरेमें पैठे हुए लोक बने हैं, ईश्वरके तीसरे स्वरूप अर्थात् ब्रह्मासे निकले हैं। इसीलिये ईसाइयोंकी शैलीमें यह स्वरूप जीव देनेवाला कहलाता है अर्थात् वह आत्मा जो (मूल प्रकृति रूपी) आकाशके जलपर सेती थी। ब्रह्मविद्याकी पुस्तकोंमें ये सब वेग प्रायः इकट्ठे लिये जाते हैं, और इनका नाम पहला प्रवाह रक्खा जाता है।

२—जब कि लोक इस अवस्था तक बन चुके थे, और बहुतसे रसायनके तत्त्व (सोना, पारा, आक्सीजन आदि) भी प्रगट हो चुके थे तब दूसरा प्राणका प्रवाह (झोका) आया, और ये ईश्वरके दूसरे स्वरूप अर्थात् विष्णुसे निकला। इस प्रवाहके साथ साथ मिलनेकी शक्ति भी आई। सब लोकोंमें उस समयलोक लोकके तत्त्व तक बन चुके थे।यह दूसरा प्रवाह इन तत्त्वोंको मिला मिला कर शरीर बनाने लगा, जिन शरीरोंमें फिर इस प्रवाहने जान डाल दी और इस प्रकार इस प्रवाहने सात भांतिकी सृष्टियां (मनुष्य, पशु, वनस्पति, व कंकड़ पत्थर आदि खनिज) रचीं। ब्रह्मविद्या सात प्रकारकी सृष्टियां

मानती है, क्योंकि इसमें मनुष्य पशुसृष्टिसे अलग माना गया है और इनके सिवाय क्रमोन्नतिमें तीन और सृष्टियां मानी है, जोकि आँखसे नहीं दिखलाई देती हैं और जिनका कि विचले समयकी भाषाके अनुसार तात्विक सृष्टि अर्थात् कामरूपादिगण सृष्टि (Elemental Kingdom) नाम रक्खा गया है।

३—दैवी जीवन शक्तिकी धारा जड़ प्रकृतिमें ऊपरसे उतरती है और इस उतारकी दो अवस्थाएं मानी जा सकती हैं। पहिले तो धीरे धीरे अधिकसे अधिक गाढ़े अणु धारण करना और फिर इन धारण किए हुए वाहनोंको धीरे धीरे उतार डालना। पहलीसे पहली या सूक्ष्मसे सूक्ष्म अवस्था जिसमें उसके वाहन ठीक ठीक दिखलाई देने लगते हैं, मानसिक अर्थात् मनलोक है, जो कि सूक्ष्मसे स्थूलकी ओर गिनते हुए पांचवीं है। यह पहली कक्षा है कि जिसपर जुदे जुदे गोले होते हैं। पढ़नेके काममें सुगमताके लिये इस मनलोकके दो भाग कर दिये जाते हैं, जिनको कि उनके अणुओंके न्यूनाधिक गाढ़ेपनके विचारसे उत्तम मन और अधम मन कहते हैं। उत्तम मनमें मन लोकके तीन सूक्ष्मतर उपविभाग होते हैं, अब रहे स्थूलतर चार उपविभाग, ये अधम मनके होते हैं।

४—जब कि दैवी जीवन शक्तिका प्रवाह उत्तम मनलोक तक उतर आता है तब वहांके सूक्ष्म तत्त्वोंको वह इकट्ठा कर लेता है और उनको मिलाकर उस लोककी मानों वस्तुएं

बनाता है, और इन्हीं वस्तुओंसे वह दैवी शक्ति आकार बनाती है और उनमें वह निवास करने लग जाती है। इसको हम प्रथम तात्विक सृष्टि या प्रथम कामरूपादिगण सृष्टि कहते हैं।

५—इस कक्षामें बहुत कालतक अलग अलग आकारोंमें क्रमोन्नति करके जीवनशक्तिका प्रवाह जो लगातार नीचे उतरनेकी चेष्टा कर रहा है इन आकारोंसे यह सीख जाता है कि मैं ही यह आकार हूं, और इसलिये इनमें निवास करने और समय समयपर उनसे हट जानेके बदले यह प्रवाह इस योग्य हो जाता है कि इन आकारोंको सदाके लिये धारण कर ले और इनमें तन्मय हो जाय ताकि आगे इस कक्षासे बढ़कर वह जीवनप्रवाह और भी नीचेके स्थूलतर आकारोंमें कुछ कालके लिये निवास करे। जब वह जीवनप्रवाह इस कक्षाको पहुंच जाता है तब उसको हम दूसरी तात्विक सृष्टि अर्थात् दूसरी कामरूपादिगण सृष्टि कहते हैं। इस सृष्टिकी जीवन-शक्ति (प्राण) तो उत्तम मनकी कक्षामें रहता है, परन्तु उसके वाहन (आकार) जिनके द्वारा वह प्रगट होती है अधम मनकी कक्षापर होते हैं।

६—फिर इतने ही बड़े कल्पांतरोंके बीतनेपर यह देखा जाता है कि इस प्रवाहके नीचे उतरनेके सुभावसे यही क्रम फिर वर्तने लगता है, और एक बार फिर यह जीवनशक्ति अपने आकारोंके साथ तन्मय हो जाती है, और अधम मनकी

कक्षामें निवास करने लग जाती है जिससे वह अब वासना-लोकके शरीरोंको जीवित करती है। इस कक्षापर हम उसे तीसरी तात्विक सृष्टि अर्थात् तीसरी कामरूपादिगण सृष्टि कहते हैं।

७—इन सब आकारों (शकलों) के लिये जब हम यह कहते हैं कि कोई सूक्ष्मतर है और कोई स्थूलतर तो इससे यह मतलब है कि आपसमें एक दूसरे सूक्ष्म या स्थूल हैं, परन्तु ये सबके सब इतने सूक्ष्म हैं कि भूलोक (स्थूल लोक) में जिन जिन आकारोंको हम जानते हैं उनसे ये अत्यन्त ही सूक्ष्म हैं। ये तीनों अलग अलग सृष्टियां हैं और इनमेंसे हरएकमें उतने ही बहुतसे भिन्न भिन्न आकार (शकलें) हैं जितने पशुओंकी या वनस्पति आदिकी सृष्टिमें दिखलाई पड़ते हैं। तीसरी तात्विक सृष्टिके आकारोंमें निवास करनेमें बहुत बड़ा समय व्यतीत करके यह जीवनप्रवाह इन आकारोंसे भी अन्तमें तन्मय हो जाता है, और इस प्रकार खनिज सृष्टिके सूक्ष्म (प्राणमय) भागको धारण करके उस सृष्टिमें जान डाल देता है। यहां यह बतला देना उचित है कि वनस्पति या पशु-सृष्टिमें जितनी जान है ठीक उतनी ही खनिजमें भी है, केवल

नोट—अणुओंकी बड़ी बड़ी सात कक्षाएं हैं और सूक्ष्मसे स्थूलकी ओर गिनते हुए उनका यह क्रम है। आदि या दैवी (१) अनुपादक (२) आत्मिक या निर्वाणिक (३) बुद्धि (४) मानसिक (५) वासनिक या काम क्रोधादिकी (६) स्थूल, भौतिक या भूलोककी (७)

यहां यह ऐसी दशामें है कि वह उतनी स्वतन्त्रतासे प्रगट नहीं होने पाती। खनिज सृष्टिमें उन्नति करते करते यह जीवन-प्रवाह अपने नीचे उतरनेके सुभावसे भूलोकके सूक्ष्म (प्राण-मय) भागसे भी पहलेकी नांई तन्मय हो जाता है और उसमें वैठकर आगे ऐसे खनिज पदार्थोंके स्थूल* शरीरोंमें जान डालता है कि जो हमारी इन्द्रियोंसे जाने जा सकते हैं।

८-खनिज सृष्टिमें हम केवल उन्ही पदार्थोंको नहीं गिनते हैं जो कि साधारण रीतिसे धातु या खनिज कहलाते हैं किन्तु द्रव और वायु और वहुतसे ऐसे सूक्ष्म आकाश या प्राणवायु (ईथिरिक) पदार्थोंको भी गिनते हैं कि जिनकी स्थितिका पश्चिमी विज्ञानियोंको परिचय नहीं है। हमारे जाने हुए जितने जड़ पदार्थ हैं सव सजीव हैं और उनमें जो जीव है उसका विकाश सदा वढ़ता रहता है। जव वह जीव खनिज कक्षाके मंझमें पहुंच जाता है तव नीचे उतरनेकी चेष्टा वन्द हो जाती है और उसकी ठौर ऊपर चढ़नेकी प्रवृत्ति आ जाती है, मानो (प्रश्वास) सांस लेना आरम्भ हो गया।

९-जव खनिज उन्नति पूरी हो जाती है तव जीव पीछा खिचकर वासना लोकमें चला जाता है, परन्तु भूलोकमें जो जो अनुभव उसने किये हैं उनसे जो लोभ हुए हैं वह उन्हें अपने साथ ले जाता है। इस अवस्थापर वह वनस्पतिके

---

* ये पदार्थ ठोस, द्रव, या वायुके रूपमें होते हैं।

आकारोंको सजीव करता है और अपने तांई अधिकतर निर्मलतासे प्रगट करने लगता है। इसको हम साधारण बोलीमें जीव अर्थात् सब प्रकारकी वनस्पतिका जीव कहते हैं और यह अपनी उन्नतिके क्रममें आगे चलकर वनस्पति-सृष्टिको छोड़ देता है और पशु सृष्टिको जीवित करता है। इस कक्षापर पहुंचना इस बातका चिन्ह है कि जीव वासनालोकसे खिंचकर और भी आगे बढ़ गया है, और अब अधम मनलोककी कक्षासे काम कर रहा है। इस मनलोकसे भौतिक पदार्थमें काम करनेके लिये जीवको, इनके बीचमें जो वासनालोक है, उसके द्रव्यमें होकर चेष्टा करनी पड़ती है; और पशुसृष्टिमें ये वासनिक द्रव्य किसी वर्गके पुंजजीव अर्थात् जातिगत जीवके वासना शरीरमें नहीं रहता वरन एक ही पशुका व्यक्तिगत वासनाशरीर हो जाता है, जैसा कि आगे समझाया जायगा।

१०–इन सृष्टियोंमें हरेकमें जीवप्रवाह इतना बड़ा समय व्यतीत करता है कि जो हमारे माननेमें कठिनाईसे आ सकता है; यही नहीं वरन वह उस सृष्टिमें उन्नतिके मार्गमें एक नियत क्रमसे चलता है, यह क्रम किसी एक सृष्टिकी नीची कक्षाओंसे चलता है और उसकी ऊंचीसे ऊंची कक्षापर समाप्त हो जाता है। यों सम्भव है कि वनस्पतिसृष्टिमें जीवनशक्ति घास या सिवालके रूपको लेकर अपना क्रम चलावे और वनके विशाल वड़, पीपल आदि पेड़ोंको सजीव करके अपना क्रम समाप्त करे। और यों ही पशुसृष्टिमें उसका क्रम मच्छरों

या अदृश्य कीड़ोंसे चले और उत्तमसे उत्तम जरायुज (दूध पीनेवाले) पशुओंमें समाप्त होवे।

११–यह सारा क्रम नीचे रूपों या शकलोंसे ऊंचे रूपोंतक या सादा रूपोंसे पेचीदा रूपोंतक लगातार उन्नतिका है। परन्तु यह क्रमोन्नति मुख्यकर रूपकी नहीं किन्तु उस जीवकी है जो इस रूपमें रहता है। ये रूप भी उन्नति करते हैं और समय समयपर उत्तम होते जाते हैं; परन्तु रूपोंकी उन्नतिका केवल यह प्रयोजन है कि जीवके प्रवाह ज्यों ज्यों आगे उन्नत होते जावें त्यों त्यों ये रूप भी उनके वाहन बननेके लिये योग्य होते जावें। जब कि पशुसृष्टिमें जीवनशक्ति ऊंचीसे ऊंची कक्षा तक पहुंच जाती है तब वह मनुष्यसृष्टिमें ऐसे अवसरोंके आनेपर जाती है कि जिनका वर्णन आगे किया जायगा।

१२—जीवनप्रवाह एक सृष्टिको छोड़ता है और दूसरीमें चला जाता है, और यों अगर हमारा सम्बन्ध एक ही प्रवाहकी एक ही लहरसे होता तो किसी एक समयमें एक ही सृष्टि मिल सकती। परन्तु ईश्वर ऐसी लहरें सदा लगातार भेजता रहता है जिससे किसी एक समयमें हमें कई लहरें साथ २ काम करती हुई मिलती हैं। हमारी मनुष्यजाति भी एक ऐसी लहर है; परन्तु हम देखते हैं कि हमारे साथ ही साथ एक और लहर चल रही है जो पशुसृष्टिमें है। यह वह लहर है जो ईश्वरमेंसे हमसे एक मंजिल पीछे निकली है। ऐसे ही हम देखते हैं कि यह वनस्पतिसृष्टि है जो

तीसरी लहर है, और यह खनिजसृष्टि है जो चौथी लहर है। इसके सिवाय हमारे चारों ओर तीन कामरूपादिगण सृष्टियां अर्थात् तीन तात्विक सृष्टियां हैं जिनको कि दिव्यदर्शी योगी जानते हैं, और वे पांचवीं छठी और सातवीं लहरें हैं। ये सब जो ईश्वरके दूसरे स्वरूप (विष्णु) से महत् प्रवाह निकला उसीकी तरंगें हैं जो लगातार एकके पीछे एक उठी हैं।

१३—यों हमारे उन्नतिका यह एक ऐसा प्रबंध है जिससे दैवी जीव अधिकसे अधिक गहरी प्रकृति (जड़ सामग्री) में पैठता जाता है ताकि इस प्रकृतिके द्वारा उसको वे कंपन मिल सकें जो कि इसके बिना उसपर लग नहीं सकते थे; अर्थात् बाहरसे उसको वे धक्के मिलें जो कि क्रमसे उस जीवमें ऐसे कंपन पैदा करें जो कि उन धक्कोंके कंपनसे मिलते हुए हों। इस सबका प्रयोजन यह है कि जीव उन कंपनोंका अनुभव करना सीख जाय। ऐसा करते करते जीव अपने आप उन कंपनोंको (बिना बाहरके धक्के लगे) पैदा करना सीख जाता है और यों यह अध्यात्म शक्तिवाला प्राणी बन जाता है।

१४—हम यह कल्पना कर सकते हैं कि जब यह जीव-प्रवाह पहले पहल ईश्वरमेंसे निकला तब यह शायद एक रस था, और यह हम सर्वथा नहीं जान सकते कि किस कक्षा-पर यह ऐसा था; परन्तु जब कि यह पहले ही पहल साक्षात् हमारे जाननेमें आया अर्थात् जब वह जीव अपने

आप तो बुद्धिलोकमें था, परन्तु उसका निवास उत्तम मनके लोकके द्रव्यके बने हुए शरीरोंमें था तब वह एक बड़ा विश्वजीव नहीं रहा था वरन् उसके बहुतसे जीव हो गये थे। अब कल्पना करो कि एक प्रवाह समान रस है। इसको यह समझ सकते हैं, कि क्रमके पहले छोरपर यह एक बड़ा विश्वजीव था और दूसरे छोरपर जब मनुष्य कक्षा आ पहुंची तब हम यह देखते हैं कि इस बड़े जीवके बिखरकर करोड़ों व्यक्तिगत (मनुष्यों) की छोटी छोटी जीवात्माएं बन गईं। इन दोनों छोरोंके बीच-में किसी मंजिलपर हमको मध्यम कक्षाकी व्यवस्था मिलती है, अर्थात् बड़े विश्वजीवके विभाग और उपविभाग तो हो गये हैं, परन्तु ये अभी अन्तिम सीमातक नहीं पहुंच पाये हैं।

१५—हरएक मनुष्य एक अलग जीव है, परन्तु हरएक पशु या पेड़ अलग जीव नहीं है। मनुष्यका जीव भूलोकमें किसी एक समयमें केवल एक शरीर द्वारा प्रकाशित हो सक्ता है, परन्तु एक पशु (पाश्विक)* जीव कई पशुओंके शरीरोंमें एक साथ प्रकाशित होता है और एक वनस्पतिका जीव अलग अलग कई पौदोंमें प्रकाशित होता है। इसका उदाहरण यह है कि सिंह सदाके लिये एक जुदी व्यक्ति ऐसी नहीं है जैसे कि मनुष्य होता है। जब मनुष्य मरता है या यों कहो कि जब उसका जीव अपने भौतिक शरीरको उतार डालता है तब वह आप वैसा ही बना रहता है जैसा कि पहिले था अर्थात्

*पशु-समूहका।

वह सब दूसरे जीवोंसे जुदा बना रहता है। जब सिंह मरता है तो अभीतक जो उसका पृथक जीव था वह उस जीवपुंजमें चला जाता है जहांसे वह आया था, यह जीवपुंज ऐसा है कि इससे कई और सिंहोंको एक ही समयमें जीव मिलता है। इस पुंजको हम पुंजजीव (Croup soul) कहते हैं।

१६—ऐसे एक पुंजजीवसे बहुतसे सिंहोंके शरीर लगे हुए होते हैं; मान लो कि ऐसे सौ शरीर उससे लगे हैं; इनमेंसे हरएक शरीरके साथ जहांतक वह जीता रहता है, पुंजजीवका सौवां हिस्सा लगा हुआ रहता है और जहां तक वह शरीर जीता रहता है यह जीवका अंश देखनेमें सब प्रकारसे जुदा होता है, यहांतक कि अपने जीते जी सिंह ठीक उतना ही व्यक्तिगत जीव होता है जितना कि मनुष्य; परन्तु सिंहकी व्यक्ति सदा रहनेवाली नहीं है। जब सिंह मरता है तो उसका जीव उस पुंजजीवमें पीछा आकर मिल जाता है जिसका कि वह अंश है और वहका वह अंश फिर उस पुंजमेंसे अलग नहीं निकाला जा सक्ता है।

१७—इसके समझनेमें इस रूपकसे सहायता मिलेगी कि पुंजजीवको एक डोल भर पानी मान लिया जाय और सिंहोंके सौ शरीरको सौ प्याले मान लिये जावें तो हरएक प्यालेके साथ जो उसमेंसे भरकर निकाला जाय प्याला भर पानी डोलमेंसे निकलेगा यह मानो जुदा जीव है, यह पानी कुछ समयके लिये अपने बर्तन (प्याले) के रूपको धारण करलेता है और दूसरे

प्यालोंके पानीसे और डोलमें बचे हुए पानीसे यह कुछ समयके लिये जुदा होता है।

१८—अब इन सौ प्यालोंमें हरएकमें किसी न किसी भांतिका रंग या गंध डाल दो। यह मानो वे गुण हैं जो कि हरएक सिंहके जीवमें उसकी जीवन अवस्था (ज़िन्दगी) के अनुभवोंसे उत्पन्न किये गये हैं। प्यालेमेंसे पानी अब पीछा डोलमें डाल दो, मानो सिंह मर गया। रंगत या गंध सब डोलभर पानीमें फैल जावेगी, परन्तु फैलने पहले प्यालेमें भरे हुए पानीकी जो रंगत या गंध थी उसके देखते हुए अब फैलनेपर डोलमें यह रंगत या गंध बहुत हलकी और फीकी रह जावेगी। जो गुण कि पुंजजीव वाले किसी एक सिंहने उत्पन्न किये वे इस रीतिसे सारे पुंजजीवमें बट जाते हैं, परंतु बटनेमें फीके या हलके रह जाते हैं।

१९—अब हम उस डोलमेंसे एक और प्याला भर कर निकालें, परन्तु जो पानी कि किसी प्यालेका एक बार डोलमें मिला दिया गया है वहका वही फिर नहीं निकल सकता है। हर प्यालेमें जो आगे डोलसे निकलता जायगा कुछ न कुछ अंश रंगत और गंधके उन सब प्यालोंके मिलेंगे, जिन २ का पानी डोलमें पीछा डाल दिया गया है। ठीक इसी रीतिसे जो २ गुण किसी एक सिंहके अनुभवसे उत्पन्न हुए हों अब उन सब सिंहोंका जो आगे उस पुंजजीवमेंसे पैदा होंगे साझेका धन बन जायंगे, केवल यह भेद होगा कि इन सिंहोंमें यह

गुण उतने उग्र या तेज़ न होंगे जितने कि उस सिंहमें थे, जिसने कि असलियतमें इन गुणोंको उत्पन्न किया था।

२०—पशुओंके जो जन्मके स्वभाव होते हैं उनकी यही व्याख्या है; यही कारण है कि बतख़ (कलहंस) का बच्चा मुर्गीसे सेये जानेपर भी पानीमें सीधा चला जाता है, और उसे तैरना सिखानेकी कोई जरूरत नहीं होती है। यही कारण है कि मुर्गीके बच्चे अंडेमेंसे निकलते ही बाज़की छाया देखकर डरके मारे दबक जाते हैं; और यही कारण है कि कोई चिड़िया कृत्रिम युक्तिसे सेई जाय और उसने कभी घोंसला न देखा हो तो भी वह घोंसला बनाना जानती है और अपनी परम्पराके अनुसार बना लेती है।

२१—पशुओंकी नीची कक्षाओंमें एक २ पुंजजीवमें इतने २ शरीर लगे होते हैं कि जिनकी गिनती करना कठिन है अर्थात् कोई २ छोटे कीड़ोंके पुंजजीवमें असंख्यात अरब खरब तक शरीर होते हैं। परन्तु जैसे २ पशुयोनिकी ऊंची कक्षाओंको लें वैसे ही एक २ पुंजजीवके शरीर गिनतीमें कम होते जाते हैं और इसी कारणसे इनकी व्यक्तियोंमें आपसमें एक दूसरेसे भेद अधिकसे अधिक बढ़ते चले जाते हैं।

२२—इसी प्रकार पुंजजीव धीरे २ बिखरते जाते हैं। डोलकी उपमाको फिर लेकर ज्यों डोलमेंसे प्याले पर प्याला पानीका निकाला जाता है और कुछ न कुछ उसमें रंग देकर फिर डोलमें छोड़ दिया जाता है त्यों त्यो सारे डोलके पानी-

का रंग धीरे धीरे गहरा होता जाता है। अब कल्पना करो कि एक प्रकारकी खड़ी झिल्ली उस डोलके बीच में आरपार ऐसी धीरे धीरे बन जाय कि जिसकी खबर न पड़े और यह होते होते ठोस होकर परदा सा बन जाय कि जिससे इस डोलके आधे आधे दो भाग हो जावें एक दाहना दूसरा बाँया, और अब जो पानीके प्याले निकाले जायं वे उसी आधे भागमें डाले जायं कि जिसमेंसे वे निकले थे।

२३—इस प्रकार थोड़े ही समयमें भेद दिखलाई देने लगेगा, और डोलके एक ओरके आधेका पानी दूसरे ओरके पानीका सा नहीं रहेगा। अब मानो एकके दो डोल बन गये, और जब पुंजजीव (Group Soul) में यह अवसर आजाता है तब उसके फटकर दो पुंजजीव हो जाते हैं। यह ठीक उसी तरह होता है जैसे कि पेड़ों या पशुओंके शरीरोंमें वृद्धिके क्रममें एक एक कणके फटकर दो दो हो जाते हैं। यों जैसे जैसे अनुभव बढ़ता जाता है पुंजजीव छोटे परन्तु गिनतीमें अधिक होते जाते हैं, यहांतक कि चढ़ते चढ़ते ऊंचीसे ऊंची कक्षापर मनुष्य अवस्था आजाती है कि जहां बिना बटा हुआ एक ही व्यक्तिगत जीव रह जाता है जो कि फिर पुंजमें नहीं जाता किन्तु सदा जुदा बना रहता है।

२४—पशु वनस्पति आदिमेंसे कोई एक सृष्टि लो। उसे कोई न कोई एक जीवनप्रवाह सजीव कर रहा होगा, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि इस जीवनप्रवाहके हरएक पुंज-

जीवको इस सारी सृष्टिमें तलीसे चोटीतक जाना पड़े। अगर वनस्पति सृष्टिमें कोई पुंजजीव वनके वृक्षोंमें है तो वह आगे जब पशु सृष्टिमें जायगा तो वह नीचेकी पशु कक्षाओंको उलांघ कर जायगा, अर्थात् वह जन्तुओं और कीड़ों और सर्प छिपकली आदिकी योनिमें नहीं जायगा वरन एक साथ वह नीचे दर्जेके दूध पिलानेवाले* [जरायुज] पशुओंसे आरम्भ करेगा। कीड़ों और सर्प छिपकली आदिकी योनिमें वे पुंजजीव जावेंगे जिन्होंने किसी कारणसे वनस्पति सृष्टिको उस कक्षा-से छोड़ दिया है कि जो बनके बड़े पेड़ोंसे बहुत नीचेपर है। इसी प्रकार वे पुंजजीव जो पशु सृष्टिमें ऊंचीसे ऊंची कक्षातक पहुंच गये हैं मनुष्य बनकर ठेठ जंगली लोगोंमें जन्म नहीं लेंगे किन्तु कुछ ऊंची कक्षाके लोगोंमें। परन्तु ठेठ जंगली लोगोंमें वे भरती होंगे जिन्होंने पशुसृष्टिको किसी नीची कक्षासे ही छोड़ा है। जीव प्रवाह अपनी शैलीकी शाखाओंको छोड़कर किसी दूसरी शैलीकी शाखामें टलकर नहीं जाता है।

२५—पुंजजीव ईश्वरके सात मंत्रियों अर्थात् लोकपालों-मेंसे किसी न किसीके जीवप्रवाहसे निकले हैं और अपने अपने निकासके अनुसार उनकी किसी एक कक्षापर या हर-एक कक्षापर सात बड़ी बड़ी शैलियां* होती हैं। इन शैलि-योंका एक दूसरेसे भेद हरएक सृष्टिमें चौड़े चौड़े दिखलाई

---

* जैसे चूहे गिलहरी।

* नक़्शा नं० १ देखो.

पड़ता है और जो जो रूप किसी एक शैलीमें धारण किये जाते हैं वे मालाके दानोंकी तरह एक दूसरेसे सुंदर रीतिसे वैठते हुए होते हैं। इस प्रकार पशु, वनस्पति, खनिज और तीनों प्रकारकी तात्विक सृष्टियोंमेंसे, हरएककी सात बड़ी शाखाएं हो सकती हैं और एक शैलीपर चढ़नेवाला जीवप्रवाह अपनी शैलीकी शाखाओंको छोड़कर किसी दूसरी शैलीकी शाखामें टलकर नहीं जाता है।

२६—इस दृष्टिसे पशुओं पेड़ों और खनिज पदार्थोंकी कोई व्यौरेवार सूची* अभीतक नहीं बनी है, परन्तु यह निश्चय है कि वह जीव जो खनिज योनिकी किसी एक शाखामें है वह खनिज योनिकी दूसरी शाखाके किसी खनिज पदार्थमें नहीं जायगा; अपनी शाखाके भीतर वह चाहे कितना फेरफार कर लेवे। जब कि यह चलकर वनस्पति या पशुसृष्टिमें जायगा तब भी उन्हीं वनस्पति और पशुओंमें जायगा जो उसकी शैलीके हैं न कि उनमें जो किसी दूसरी शैलीके हैं, जब यह अन्तमें मनुष्य कक्षाको पहुंचेगा तब भी यह अपनी ही शैलीके मनुष्योंमें जन्म लेगा न कि किसी दूसरी शैलीके मनुष्योंमें।

२७—किसी पशुका जीव जब अपने पुंजजीवकी कक्षासे इतना ऊंचा उठ जाता है कि वह उस पुंजमें फिर जाकर नहीं

* नकशा नं० १ देखो.

मिल सकता तब उस जीवमें अहंता [मनुष्यता] आ जाती है। इस क्रियाका नाम व्यक्तिकरण है। यह क्रिया हरेक पशुके साथ नहीं हो सकती है किन्तु केवल उन पशुओंके साथ हो सकती है कि जिनका भेजा एक विशेष कक्षा तक उन्नति कर चुका है, और ऐसी मानसिक उन्नति प्राप्त होनेके लिये प्रायः यह प्रथा है कि उस पशुका मनुष्योंसे गाढ़ा सम्बन्ध कर दिया जाता है। इसलिये अहंता [मनुष्यता] की प्राप्ति केवल घरेलू जानवरोंको ही सम्भव हो सकती है, और इनमें-से भी केवल किसी किसी जाति वालोंको। इन सातों शाखाओं* में हर एकके ऊपरके सिरेपर इन घरेलू जानवरों-मेंसे कोई न कोई जाति होती है जैसे एकमें कुत्ता दूसरेमें बिल्ली तीसरेमें हाथी चौथेमें बन्दर इत्यादि। सब जंगली जानवर सात शाखाओंमें छांटे जा सकते हैं और ये सब शाखायें चढ़ते चढ़ते घरेलू जानवरों तक पहुंचती है; जैसे लोमड़ी और भेड़िया प्रत्यक्ष कुत्तेकी श्रेणीमें है और योंही सिंह बघेरे और चीतेकी शाखा प्रत्यक्ष घरेलू बिल्ली तक पहुंचती है। इस प्रकार वह पुंजजीव जो सौ सिंहोंमें जान डालता है जैसा कि कुछ देर पहले कहा गया है सम्भव है कि उन्नति करते करते किसी कक्षापर ऐसे पांच पुंजजीवोंमें बट जाय कि जिसमेंसे हर एकमें बीस बीस बिल्लियां हों।

२८–पशु वनस्पति आदि हर एक सृष्टिमें जीवप्रवाहको

* नकशा नं० १ देखो.

बहुत बड़ा काल लग जाता है। ऐसे एक कल्पके मंझसे हम अब कुछ ही आगे बढ़े हैं; और अहंता या व्यक्तिकरण [मनुष्यता] की प्राप्ति साधारण हालतमें किसी कल्पके अंतमें ही हुआ करती है और हम अभी ऐसे एक कल्पके मध्यसे कुछ ही आगे बढ़ पाये हैं। इसीलिये अभी अहंता [मनुष्यता] प्राप्त होनेके लिये देश काल अनुकूल नहीं हैं। जब कोई जानवर सामान्य कक्षासे बहुत आगे उन्नति कर लेता है तब उसको ऐसी अहंता [मनुष्यता] की प्राप्ति हो जाती है, परन्तु ऐसे अवसर विरले देखनेमें आते हैं। इस सफलताके प्राप्त करनेके लिये अवश्य है कि जानवर मनुष्यकी निज संगतमें रहे। यदि जानवरके साथ दयालुताका बर्ताव किया जावे तो उसमें अपने उपकार करनेवाले मनुष्यके लिये भक्ति सहित प्रेम उत्पन्न होता है, और अपने उपकारके अभिप्रायके समझने और उसकी इच्छाओंको पहलेसे जाननेकी चेष्टा करनेमें उसकी तर्कशक्ति [अक़्ल] भी बढ़ती है। इसके सिवाय उस मनुष्यके हृदयके भाव और मनके विचार उस पशुपर सदा पड़ते रहते हैं, और इससे उस पशुके मन और हृदय दोनोंकी उन्नति होती रहती है। देशकाल अगर अनुकूल हो तो यह उन्नति इतनी बढ़ सकती है कि वह जानवर अपने पुंजजीवसे सर्वथा छूटकर उसकी कक्षासे ऊंचा हो जाता है और इसपर उस पुंज जीवका वह अंश जो उस जानवरका जीव था इस योग्य बन जाता है कि उस प्रवाहका पात्र हो

सके जो दैवके प्रथम स्वरूप अर्थात् शिवसे निकलता है। अर्थात् जिससे मनुष्य वनते हैं।

२६—पहले और दूसरे प्रवाहोंसे तो एक वड़ा झोका सा आता है जो हजारों वा लाखोंके समूह पर एक साथ लगता है परन्तु यह तीसरा अर्थात् शिवका प्रवाह ऐसा नहीं है। यह तो हर एकको अलग अलग लगता है जैसे जैसे कि वह इसके लेनेके लिये तैयार होता जाता है। यह झोका वुद्धि लोक तक तो पहिले हीसे उतर आता है परन्तु इससे और नीचा नहीं उतरता जब तक कि किसी पशुका जीव नीचेसे ऊपरको इसके लेनेको नहीं उछले; मगर जब कभी किसी पशुका जीव इस प्रकार ऊपरको उछलता है तभी यह तीसरा प्रवाह उसके मिलनेको कूद पड़ता है और तव उत्तम मनके लोकमें एक जीवात्मा वन जाती है, अर्थात् ऐसी अहंता या व्यक्ति वन जाती है जो नित्य या सदा रहती है। सदा वनी रहनेसे केवल यहां यह अभिप्राय है कि वह अहंता तव तक बनी रहती है जब तक कालान्तरमें मनुष्य उन्नति करते २ इस अहंताको पार करके पीछा ईश्वरमें न मिल जाय जहांसे कि वह आया था। पुंजजीवका वह अंश जो कि अभी तक पशुमें बराबर जीवका काम दे रहा है अब जीवात्माके उत्पन्न होनेके लिये आप वाहन या शरीर वन जाता है और वह तीसरे प्रवाहकी दैवी चिंगारी जो कि ऊपरसे इसमें आ पड़ी है अब इसे चैतन्य करके इसमें रहने लग जाती

है। यह कहा जा सकता है कि पुंजजीवपर उसकी क्रमोन्नति भरमें ये चिंगारियां अपने अनुपादक लोकमें बराबर मंडलाती रहती हैं जहां तक कि पुंजजीवका वह अंश जो इससे संबन्ध रखता है इतनी उन्नति न करले कि चिंगारी उससे मिल सके। इस प्रकार किसी सबसे ऊंची कक्षाके पशुके जीवका अपने पुंजजीवके शेष भागसे अलग हो जाना और जुदी अहंता उत्पन्न कर लेनाही वह क्रिया है जिससे ऊंचेसे ऊंचे जानवर और नीचेसे नीचे मनुष्यमें अन्तर रहता है।



अध्याय पांचवां।

मनुष्यकी बनावट।

जैसा कि पहले कह आये हैं वैसे, मनुष्य असलमें दैवी आगकी एक चिंगारी है जो कि अनुपादक* लोककी है। जहां तक इस लोकमें यह चिंगारी रहती है वहां तक हम

---

* सातों लोकोंके नामोंमें प्रेसिडेन्ट (सभापति) ने सुभीतेके लिये जो फेरफार हालमें की है वह नीचे दी है और इसके साथही हर लोकके अणुमें जितने जितने असली बुदबुदे हैं सो भी सुभीतेके लिये तीसरे अध्यायके पृष्ठ (२९,३०) के सम्बन्धमें यहां ही दिखला दिये गये हैं।

नं०	पुराना नाम	नया नाम	एक २ अणुम बुदबुदोंकी गिनती
१	आदितल	दैवीलोक	$(४९^{०})$=१
२	अनुपादकतल	ईश्वरांशिक लोक	$(४९^{१})$=४९
३	आत्मिक या ,, निर्वाणिक ,,	अध्यात्मिकलोक	$(४९^{२})$=२४०१
४	बुद्धिक ,,	बुद्धिक ,,	$(४९^{३})$=११७६४९
५	मानसिक ,,	मानसिक ,,	$(४९^{४})$=५७६४८०१
६	वासनिक ,,	वासनिक ,,	$(४९^{५})$=२८२४७५२४९
७	भौतिक ,, या स्थूल	स्थूल ,,	$(४९^{६})$=१३८४१२८७२०१

इसको ईश्वरका अंश [ईश्वरांश Monad] कहते हैं मनुष्यकी उन्नतिके लिये यह ईश्वरांश नीचेके लोकोंमें आ प्रकट होता है। जब कि यह एक मंजिल उतर आता है और आत्मिक लोकमें आ जाता है, तो वहां यह त्रिमूर्तिके भांति अपने आप-को प्रकाशित करता है और इसमें तीन स्वरूप होते हैं, जैसे कि अत्यन्त ऊँचे लोकमें ईश्वरके तीन रूप होते हैं। इन तीन-मेंसे एक सदा आत्मिक लोकमें ही बना रहता है, हम उसको मनुष्यकी आत्मा कहते हैं। दूसरा बुद्धिके लोकमें प्रकट होता है, इसको हम मनुष्यकी बुद्धि कहते हैं और तीसरा उत्तम मनलोकमें प्रगट होता है, उसे हम मनुष्यकी विचार-शक्ति (अकल) कहते हैं। इन तीन स्वरूपोंसे मिलकर जीवात्मा बनती है, जो कि पुञ्जजीवके एक अंशको सजीव करती है। यों मनुष्य है तो असलमें ईश्वरांश और अनुपा-दक लोकका रहनेवाला, परन्तु हमारे परिचयके अनुसार वह उत्तम मनलोकमें जीवात्माके रूपमें प्रगट होता है और वहां अपने तीनों रूप (आत्मा, बुद्धि, मन) उस शरीरमें होकर दिखलाता है, जो उत्तम मनलोकके पदार्थोंका बना हुआ है और जिसको कि हम विज्ञानमयकोष कहते हैं।

२—सृष्टिकी क्रमोन्नतिके मनुष्य विभागमें यह जीवात्मा ही मनुष्य है और साधारण बोलीमें जो आत्माका अर्थ लिया जाता है उसका वास्तवमें यह सबसे नगीचका पर्याय है। अहंता प्राप्त होनेके समयसे लेकर मनुष्यताकी कक्षासे पार

होकर ईश्वरमें मिल जानेतक यह बदलता नहीं है, अलबत्त बढ़ता तो है। जिसको हम जन्म और मरण कहते हैं, उससे इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता और जन्मसे मरण तकके समय-को हम साधारणमें उसका जीवन (आयु) कहते हैं, परन्तु उसके जीवनमें मानो यह केवल एक दिन है। यह शरीर जिसको कि हम देख सकते हैं और जो पैदा होता और मरता है, वह मानो एक वस्त्र है, जिसको वह इसलिये धारण करता है कि उसकी उन्नतिके किसी एक भागका प्रयोजन सिद्ध हो।

३—यह ही अकेला शरीर नहीं है, जिसको वह धारण करती है। जीवात्मा उत्तम मनलोकसे स्थूललोकके शरीरको धारण नहीं कर सकती, जब तक कि वह बीचके अधम मन-लोक और वासनालोकमें होकर स्थूल लोकसे अपना सम्बन्ध न कर ले। जब वह नीचे उतरना चाहती है; तब वह अपने चारों ओर अधम मनलोकके पदार्थका वेठन बना लेती है और यह उसका मन शरीर कहलाता है। यही ओजार है जिससे वह अपने स्थूल वस्तुओंका विचार कर सक्ती है क्योंकि सूक्ष्म अर्थात् परामर्श विचार तो उत्तम मनलोकमें बैठे हुए स्वयं जीवात्माकी ही शक्ति है।

४—फिर वह अपने चारों ओर वासनालोकके पदार्थको लेकर एक और बेठन बना लेता है, जो कि उसका वासना शरीर कहलाता है और यह उसके काम क्रोधादि वासनाओं-का ओजार है; और यही उसके मन शरीरके नीचे भागसे

मिलकर ऐसा ओजार बनता है कि जिससे उसके ऐसे विचार सोचे जाते हैं कि जो स्वार्थपन और ममतासे रंगे हुए हैं। इन बीचके वाहनोंको धारण करनेपर ही जीवात्मा किसी गर्भमें बच्चेके शरीरमें आ सकता है और इस संसारमें जन्म ले सकता है। वह जीवात्मा अपनी जिन्दगीमें कर्मों और तजुरबोंसे सद्गुण प्राप्त करती है और अपनी आयुके अन्तमें स्थूल शरीरके बिखर जानेपर वह जिस क्रमसे पहले उतरी थी उससे उलटी चलने लगती है; और अनित्य शरीरोंको जिनको कि उसने धारण किया था एक एक करके उतार डालती है। सबसे पहले स्थूल शरीर माना है; और जब यह उतर चुकता है तब उसका ज्ञान वासनालोकमें* आ जाती है और यह जीवात्मा अपने वासना शरीरमें रहती है।

५—स्थूल लोकमें जाते ही उसने जितना काम क्रोधादि वासनाओंको अपनेमें अधिक या कम बढ़ाया है, उसके अनुसार अधिक या कम उसको भुवर्लोकमें ठहरना पड़ता है। अगर ये वासनाएं अधिक हैं तो उसके वासनाशरीरमें प्रबल ज्ञान होगी और वह वासना शरीर बहुत दिनोंतक ठहरेगा और अगर ये वासनाएं कम होंगी तो उसके वासनाशरीरमें कम ज्ञान होगी और वह उसको जल्द ही उतार सकेगा। जब यह शरीर उतर चुकेगा तब जीवात्माको यह भान होगा, कि मैं मनशरीर-

* वासनालोकको भुवर्लोक भी कहते हैं, इसके नीचेके उपविभागोंको प्रेतलोक और ऊपरको पितृलोक कहते हैं।

में रह रही हूँ। उसको किस ढंगके विचारोंका अभ्यास रहा है इससे उसके मनशरीरके पोढेपनकी कूंत होती है और बहुधा उसका मनलोक [स्वर्ग] में ठहरना वहुत कालतक होता है। निदान उसके स्वर्गमें रहनेकाभी छोर आ जाता है और तब वह अपने मनशरीरको भी उतार कर फेंक देता है, और इसके पीछे वह जीवात्मा अपनेको फिर अपने निज लोक [उत्तम मनलोक] में होना अनुभव करता है।

६—उन्नतिमें कमी होनेके कारण उसको इस [उत्तम मन] लोकमें अभी वोध थोड़ा सा ही होता है; इस लोकके अणुओंके कंपन इतने अधिक वेगसे होते हैं कि ये उस [जीवात्मा] पर असर नहीं करते हैं, ठीक उसी रीतिसे जैसे कि सूरजकी किरणोंमेंसे इन्द्रधनुषमें लाल नारंगी पीली हरी आसमानी नीली और बैंजनी किरणें, जो क्रमसे दिखलाई पड़ती हैं उनके सिवाय बैंजनी रङ्गके आगे और भी रंगोंकी किरणें हैं, जो दिखलाई नहीं पड़तीं, क्योंकि वे इतने वेगवाली हैं कि हमारी आंखोंपर नहीं गड़तीं। इस उत्तम मनलोकमें कुछ सुस्ताके उसे यह इच्छा होती है, कि वह नीचे इतना उतरे कि जहांके कँपनोंका उसे परिचय होने लग जाय, कि जिससे उसको यह भान हो सके कि वह पूरे तौरपर जीवित या जिन्दा है। यों वह फिर क्रमसे अधिकसे अधिक स्थूल पदार्थमें उतरती है, और फिर नये सरेसे मन शरीर, वासना शरीर और स्थूल शरीर धारण कर लेती है। उसके पहलेके शरीर एक एक

करके सब खिर चुके हैं, इसलिये ये नये शरीर उनसे सर्वथा अलग हैं; और इसीसे यह बात है कि जीवात्माको अपने पहलेके स्थूल जीवन चरित्रोंकी इस स्थूल शरीरमें कुछ भी याद नहीं रहती है।

७—इस स्थूललोककी आयुमें जो कुछ उसे याद आता है वह मनशरीरके द्वारा आता है, परन्तु यह शरीर नया है, और केवल इस जन्मके लिये धारण किया गया है, इसलिये यह स्वतःसिद्ध है, कि इसमें पहले जन्मोंकी याद नहीं रह सक्ती, क्योंकि उन जन्मोंमें इसका कोई संसर्ग नहीं था। स्वयं मनुष्य [उसकी जीवात्मा] को जब कि वह अपने निजलोकमें होता है यह सब याद रहती है, और कभी कभी उसके पहली जन्मोंकी कुछ थोड़ी सी याद या उन जन्मोंका कुछ असर उसके नीचेके शरीरोंमें भी टपक आता है। उसको अपनी स्थूल आयुमें अपने पहलेके जन्मोंके आचरणोंकी याद प्रायः नहीं रहा करती है, परन्तु उन आचरणोंसे जो जो गुण उसमें बढ़े हैं उनको वह अपने स्थूल जीवनमें प्रगट कर देता है। इसी कारण हरएक मनुष्य ठीक वैसा ही होता है जैसा कि उसने अपनेको पिछले जन्मोंमें बना लिया है। पिछले जन्मोंमें अगर उसने अपनेमें सद्गुण बढ़ाये हैं तो अब भी उसमें सद्गुण होते हैं; और अगर वह अपनी शिक्षामें असावधान या बेपरवाह रहा है और इससे अपनेको निर्बल और बुरी प्रकृतिका बना रहने दिया है तो अब भी वह अपनेको इसी

५

दशामें पावेगा। वे गुण, चाहे अच्छे हों या बुरे, जिनके साथ वह जन्म लेता है वे ही हैं जिनको उसने स्वयं उत्पन्न किये हैं।

८—शरीरोंके धारण करनेके सारे क्रमका प्रयोजन यह है कि जवात्माका विकाश हो। जिन तरंगोंके प्रतिभास या सहानुभूति करनेकी इसमें योग्यता है वे इसको इन शरीरोंमें हीं होकर लग सक्ती हैं, और इसीलिये यह प्रकृतिके बेठनोंको धारण करता है ताकि उसकी गुप्त शक्तियां इस भांत उघड़ जावें। मनुष्य ऊँचेसे इन नीचे लोकोंमें उतरता है परन्तु है यह केवल इस उतरने हीका फल, कि उसमें इन ऊंचे लोकोंका पूरा ज्ञान शनै शनै उत्पन्न होता है। किसी लोकका पूरा ज्ञान जब हो सक्ता है कि उस लोकके सब तरंगोंके अनुभव करनेकी और उनसे सहानुभूति करनेकी सामर्थ्य हो। इस-लिये साधारण मनुष्यको अभीतक पूरा ज्ञान किसी लोकका नहीं हुआ है, यहांतक कि वह समझता है तो यह है कि इस स्थूल लोकको मैं अच्छी तरह जानता हूँ, परन्तु इसका भी उसे पूरा ज्ञान नहीं हुआ है। यह संभव है कि वह इन सब लोकोंकी जान लेनेकी अपनेमें शक्ति उघाड़ ले और ऐसे ही बढ़ाई हुई शक्तिसे, हमने ये सब बातें देखी हैं, जिनका हम वर्णन कर रहे हैं।

९—कारण शरीर जीवात्माका उत्तम मनलोकमें नित्य रहने वाला शरीर है। यह उस लोकके पहले, दूसरे और

तीसरे उपविभागोंकी सामग्रीसे बना है। साधारण मनुष्योंमें यह शरीर अभीतक पूरा चंचल नहीं हो पाया है, क्योंकि इसमें केवल यह अंश ही चैतन्य है, जो कि तीसरे उपविभाग-का है। जो जो अपनी उन्नतिके दीर्घ क्रममें, जीवात्मा अपनी गुप्त शक्तियोंको उघाड़ता जाता है त्यों त्यों इस शरीरमें ऊंचे उपविभागोंके अंश धीरे धीरे सचेत होते जाते हैं, परन्तु इस शरीरकी पूर्ण विकाश या पहुंचे हुए मनुष्यमें होता है, जिसे हम महात्मा या ऋषि कहते हैं। ऐसे अंश दिव्यदृष्टिसे वे लोग ही देख सकते हैं जो जीवात्माकी दृष्टिको काममें लाना जानते हैं।

१०—कारण शरीरका पूरा वृत्तांत करना कठिन है क्योंकि उसके लोककी इन्द्रियां हमारी इस लोककी इन्द्रियोंसे सर्वथा अलग और ऊंची हैं। कारणशरीरको देखकर दिव्यदृष्टि वाला जितनी उसकी शकलकी स्मृति [याद] जाग्रत अव-स्थामें ला सकता है, उसके अनुसार यह शकल अंडाकार है, और मनुष्यके साधारण अवस्थाके स्थूल शरीरसे लगभग डेढ़ डेढ़ फुट चारों ओर बाहर निकला हुआ होता है। जंगली मनुष्यका कारणशरीर बुदबुदा सा होता है और रीता [खाली] सा दिखलायी पड़ता है। वह असलमें उत्तम मनके पदार्थसे भरा हुआ तो है, परन्तु अभी यह चैतन्य नहीं हो पाया है, इसलिये अब भी यह शरीर बिना रंगका है, और इसमें आर पार दिखलायी पड़ता है। जैसे जैसे उन्नात

होती जायगी वैसे वैसे नीचेके शरीरोंकी जो तरंगें इसमें लगेंगी उनसे इसमें धीरे धीरे चेष्टा आती जायगी। यह क्रिया होती बहुत धीरे धीरे है, क्योंकि उन्नतिके नीचेके खंडोंमें मनुष्यके करतब ऐसे नहीं होते कि उत्तम मनके शरीरकेसे सूक्ष्म अणुओंमें इनका उभार हो सके, परन्तु जब कि मनुष्य उन्नतिके उस खंडपर पहुँच जाता है, कि जहां वह या तो सूक्ष्म बिचार या परोपकारी भाव करने लग जाय, तब कारण-शरीर जाग जाता है, और इनकी प्रतिभा (झिलक) देने लग जाता है।

११—जब इन लहरोंके कंपन मनुष्यमें उभरते हैं तो वे उसके कारणशरीरमें रंगोंकी शकलमें दिखलाई देने लगते हैं, और इससे यह होता है कि जो कारणशरीर पहले केवल पारदर्शक बुदबुदा था वह अब धीरे २ अतिसुहावने और मधुर रंगोंके पदार्थसे भरा हुआ गोला बन जाता है; और यह एक ऐसी सुन्दर वस्तु बन जाती है कि विचारसे बाहर है। परीक्षासे मालूम हुआ है कि ये रंग अर्थसूचक हैं। वह कंपन कि जिससे निस्स्वार्थ प्रीतिकी शक्तिकी सूचना होती है हलका गुलाबी रंग सा दिखलाई पड़ता है; ऊंची तर्कशक्तिका रंग पीला, सहानुभूतिका रंग हरा, और आस्मानी रंग भक्तिभावका; और चटकीला नीला रंग ऊंची परमार्थनिष्ठाकी सूचना करता है। येही रंगोंकी सूची स्थूल-तर शरीरोंमें लगती है, परन्तु क्रमसे आते आते भूलोक-

में ये रंग बहुत मंद हो जाते हैं अर्थात् इनकी कोमलता और चटकीलेपन दोनोंमें कमी हो जाती है।

१२—उन्नतिके क्रममें नीचे लोकोंमें मनुष्य बहुधा अपने शरीरोंमें ऐसे गुण भर लेता है, जो कि बुरे और नेष्ट जीवात्मा-के विकाशके लिये सर्वथा प्रतिकूल हैं; जैसे कि अभिमान, चिड़चिड़ापन, विषयाशक्ति। और गुणोंकी तरह इन बुरे गुणोंके भी अलग २ कंपन हैं, परन्तु ये सब अपने २ लोकोंमें नीचेके उपविभागोंके हैं, और इसलिये कारणशरीरमें इनका प्रतिभास या उभार नहीं हो सकता, क्योंकि कारणशरीर अपने लोकके केवल ऊंचेके तीन उपविभागोंके पदार्थका बना हुआ है। इसका कारण यह है कि वासनाशरीरका हरएक विभाग मनशरीरमें अपने मिलते हुए विभागपर बलपूर्वक प्रभाव डालता है, और अपने मिलते भागके सिवाय और किसी दूसरे भागपर कुछ भी उसका प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिये कारणशरीरपर वासनाशरीरके ऊपरके तीन भागों-का ही प्रभाव पड़ सकता है और इनकी तरंगें केवल सद्गुणों-की सूचक होती हैं।

१३—उपयोगी बात इसमें यह है कि मनुष्य अपनी जी-वात्मामें अर्थात् अपने आपमें सद्गुणोंके सिवाय और कुछ नहीं भर सकता है; जो अपगुण वह अंगीकार करता है वे असलमें क्षणिक हैं अर्थात् सदा रहनेवाले नहीं हैं, और इसलिये जब वह आगे बढ़ता है तो ये अलग पड़ जाते हैं

क्योंकि उसमें ऐसे कोई अणु नहीं रहते कि जो इन अवगुणों-को प्रकाशित कर सकें। जंगली मनुष्य और संतके कारण शरीरोंमें यह भेद होता है कि जंगली मनुष्यका तो रीता और विना रंगका होता है, परन्तु संतका चमकीले दमकीले रंगोंसे भरा हुआ होता है। जब मनुष्य संतकी कक्षासे भी आगे बढ़ जाता है और बड़ी अध्यात्मशक्ति वाला बन जाता है तब उसका कारणशरीर आकारमें बढ़ जाता है, क्योंकि उसे अब इतना अधिक भाव प्रगट करना पड़ता है;—और तब इसमेंसे तीव्र प्रकाशकी बलिष्ठ किरणें चारों ओर निकलती हैं। महात्मा पद या जीवनमुक्ति प्राप्त होने पर इस शरीरका आकार वृहद् हो जाता है।

१४–मनशरीर मनलोकके नीचेके चार उपविभागोंके द्रव्य-का बनता है और मनुष्यके स्थूल विचारोंकी इससे सूचना होती है। यहां भी रंगोंकी ऐसी ही सूची है जैसी कि कारण शरीरमें थी। रंग कुछ कम कोमल होते हैं और एक दो रंग अधिक भी होते हैं. जैसे कि अभिमानके विचारका नारंगी रंग दिखलाई पड़ता है, और चिड़चिड़ेपनका चमकता हुआ गुलैनारका रंग। यहां कभी कभी लालचका चटकीला किरमिची रंग और स्वार्थताका धुमला किरमिची, और कपटका धुमला हरा रंग, दिखलाई पड़ता है। यहां हम कई एक मिले हुए रंग भी देखते हैं। प्रीति, ज्ञान और भक्तिमें स्वार्थताकी झांई हो सकती है, और अगर ऐसा हो तो उनके अलग २ रंगोंमें

स्वार्थताका किरमिची रंग मिला हुआ होता है और इस कारण-से ये रंग हमको अशुद्ध और गदले दिखलाई पड़ते हैं। मन शरी-रके कण अपने आपसमें सदा अत्यन्त तेजीसे चलते रहते हैं तो भी इस शरीरकी बनावट निरी बेडौल नहीं होती है।

१५–मनशरीरकी लम्बाई चौड़ाई और शकलका अनुमान कारणशरीरकी लम्बाई चौड़ाई और शकलसे बांधा जाता है। मनशरीरमें कुछ धारियां होती हैं जिनसे कि इस [मनशरीर] में फांके बन जाती हैं, जो थोड़ी या बहुत बेडौल होती हैं। इनमेंसे हरएक फांकका भेजेके किसी एक हिस्से या खण्डसे सम्बन्ध होता है, और इसलिये हरएक जातिके विचारके सोचनेकी क्रिया, भेजेमें अपने अपने सम्बन्ध रखनेवाले खण्ड-से होती है। मनशरीरकी वृद्धि साधारण मनुष्योंमें अभी इतनी अधूरी है कि बहुतसे मनुष्य ऐसे हैं कि जिनमें बहुतसे ऐसे खण्ड जाग्रत नहीं हुए हैं, और यदि किसी ऐसे विचा-रके सोचनेकी चेष्टा करना हो कि जिसका सम्बन्ध किसी ऐसे बिना जगे हुए खण्डसे हो तो उसे फेर खाकर किसी ऐसे दूसरी [अयुक्त] नालीमें होकर चलना पड़ता है जो पूरी खुली हुई मिलजाय। इससे यह दोष रह जाता है कि ऐसे विषयोंपर इन लोगोंका विचार भद्दा और धुमला होता है। यह ही सबब है कि कोई तो गणितमें चतुर होते हैं, और कोई ठीक ठीक जोड़ भी नहीं कर सकते; और ऐसे ही कोई कोई तो संगीत [गाना बजाना] को सहज ही समझते

हैं, उसका सन्मान करते हैं, और उसमें रस [मजा] लेते हैं, और कोई ऐसे होते हैं जो एक स्वरको दूसरे स्वरसे भी नहीं पहचान सकते।

१६–मनशरीरके सब अणुओंके भली भांति आपसमें घूमते रहना चाहिये, परन्तु कभी कभी कोई मनुष्य किसी विषयपर अपने विचारको पक्षपातसे जमा देता है तो इससे उस घूमनेकी गतिमें रोक हो जाती है और एक ऐसा जमाव हो जाता है कि जो कुछ देरमें कड़ा होकर मनशरीरपर एक मस्सा सा बन जाता है। ऐसा मस्सा हमको यहां दुनियांमें पक्षपातके रूपमें दिखलायी पड़ता है, और जबतक यह घुल न जाय, और अणुओंका घूमना बेरोक टोक फिर न होने लगे तबतक यह असम्भव है कि वह मनुष्य अपने मनके उस विशेष खण्डके सम्बन्धमें ठीक ठीक विचार कर सके या साफ साफ देख सके; क्योंकि उस मस्साके जमावसे तरङ्गोंका भीतरसे बाहर और बाहरसे भीतरका स्वच्छंद आना जाना रुक जाता है।

१७–जब कि कोई मनुष्य अपने मनशरीरके किसी भागको काममें लाता है तो वह भाग उस समय केवल तेज ही नहीं लहराता किन्तु वह थोड़ी देरके लिये फूल जाता है और उसका आकार बढ़ जाता है। अगर किसी विषयपर बहुत कालतक विचार रहता है तो यह आकारकी वृद्धि सदाके लिये बनी रहती है, और इस रीतिसे हरएक मनुष्यको अधि-

कार है कि वह अपने मनशरीरके आकारको चाहे उचित मार्गमें बढावे, चाहे अनुचित मार्गमें।

१८–अच्छे विचारोंसे मनशरीरके सूक्ष्मतर अणुओंमें कंपन उत्पन्न होते हैं, और ये अणु हल्के होनेके कारण अंडाकृत मनशरीरके ऊपरके भागमें तैरते रहते हैं; और इसके विपरीत स्वार्थता और लालच जैसे बुरे विचार मनशरीरके स्थूलतर अणुओंके कंपन होते हैं, और ये अणु उस अंडेके नीचेके भागकी ओर बैठनेको झुकते हैं। साधारण मनुष्य बहुधा भांत भांतके स्वार्थी विचारोंके वश हो जाता है, इसलिये उसके मनशरीरके नीचेका भाग प्रायः फूला हुआ होता है, और उसका आकार ऐसा दिखलाई पड़ता है मानो एक अंडा है कि जिसकी बड़ी कोर नीचेको है। जिस मनुष्यने इस नीचेके विचारोंको दबा लिया है और ऊंचेके विचारोंको अपनेमें लगाया है, उसके मनशरीरके ऊपरका भाग फूलने लगता है, इसलिये उसकी शकल ऐसे अंडेकी सी होती है कि जो अपनी हल्की कोरपर खड़ा हो। मनुष्यके मनशरीरके रंगों और धारियोंको देखकर दिव्यदृष्टिवाला उसके सहज सुभावको जान सकता है, और यह कि उसने इस जन्ममें कितनी उन्नति की है। कारणशरीरकी ऐसी ही बातोंको देखकर वह यह भी देख सकता है कि पशुयोनि छोड़कर जब जीवात्मा बनो थी, तबसे अबतक किसी मनुष्यने कितनी उन्नति की है।

१९–जब कोई मनुष्य किसी पुस्तक या घर या वन

इत्यादि स्थूल पदार्थका विचार करता है तो उसके मनशरीरमें उस वस्तुकी एक नन्ही सी मूर्ति बन जाती है। वह मूर्ति उस शरीरके ऊपरके भागमें प्रायः उसके मुंहके सामने और कुछ कुछ आंखोंके बराबर तिरती रहती है जबतक मनुष्य उस वस्तुका विचार या ध्यान करता रहता है तबतक और उसके पीछे भी प्रायः कुछ देरतक यह मूर्ति बनी रहती है; और जितना विचार प्रबल और साफ होता है, उतनी ही देरतक पीछेसे यह मूर्ति बनी रहती है। यह मूर्ति सचमुच बनती है; और इसको कोई दूसरा मनुष्य भी देख सकता है, अगर उसने अपने मन शरीरकी दिव्यदृष्टि उभार ली हो। जब कोई मनुष्य अपने मनमें किसी दूसरेका विचार या खयाल करता है, तो इसी प्रकार उस सोचनेवालेके मनशरीरमें एक नन्हासा चित्र बन जाता है, अगर उसका विचार केवल स्मर्ण मात्र ही है, और उसमें राग या द्वेष अर्थात् प्रीति या ग्लानि किसी वासना या मिलनेकी इच्छा जैसे लालसा मिली हुई नहीं है, तो उस विचारका प्रायः प्रत्यक्ष संस्कार उस मनुष्य पर नहीं पड़ता है कि जिसका स्मर्ण किया गया है।

२०—अगर किसी मनुष्यका ख्याल किया जाय और उसके साथ कोई प्रेमकी या और किसी भांतिकी भावना मिली हुई है तो चित्र बननेके सिवाय एक और भी बात होती है। प्रीतिका खयाल, खयाल करनेवालेके शरीरके द्रव्यमेंसे एक विशेष शकल बना लेता है, और उसमें वासना मिली हुई

होनेके कारण उसके चारों ओर उस मनुष्यके वासनाशरीरका द्रव्य भी खिंच आता है, और इस भांत एक वासना और मानसिक द्रव्योंकी मिश्रित शकल बन जाती है, और यह जिस शरीरमें बनी है, उससे बाहर उछल पड़ती है, और आकाशमें उस मनुष्यकी ओर जाती है कि जो उस प्रेमका पात्र है। अगर यह खयाल बहुत प्रबल है तो दूरीसे इसमें कुछ भी अंतर नहीं पड़ता है; परंतु खयाल करनेवाला अगर साधारण मनुष्य है तो उसका खयाल प्रायः निर्बल और बिखरा हुआ होता है, और इसी कारण कुछ दूरीसे आगे इसका प्रभाव नहीं रहता है।

२१—जब यह विचाराकार (विचारकी मूर्ति) अपने पात्रके पास पहुँच जाता है, तो यह उसके वासना और मन शरीरोंमें छूट जाता है और अपने कंपनकी गति [रंग] उनमें लगा देता है। या यों कहो कि प्रेमका संकल्प [खयाल] जब एक मनुष्यसे दूसरेकी ओर जाता है, तो इसमें कुछ शक्ति और कुछ पदार्थ दोनों साक्षात् भेजनेवालेसे उठकर उस दूसरेके पास पहुँचते हैं; और इस दूसरे मनुष्यपर जो इसका पात्र है इसका यह असर होता है कि इसमें भी प्रेमकी भावना खड़ी होती है और सदाके लिये भी इसमें कुछ प्रेमकी शक्ति बढ़ जाती है। ऐसे खयालसे भेजनेवालेकी प्रेमशक्ति भी पुष्ट होती है और इसलिये इससे भेजनेवाले और लेनेवाले दोनोंको ही एक साथ लाभ होता है।

२२—हरएक विचार या ख़यालसे कोई न कोई आकार [शकल] बनता है, अगर खयाल किसी दूसरे मनुष्यकी ओर भेजा जाय तो यह शकल उसके पास चली जाती है और अगर यह खयाल केवल स्वार्थताका हो तो उसी मनुष्यके पास बनी रहती है, जो इसका सोचनेवाला है। अगर यह इन दोनोंमेंसे एक भी प्रकारका नहीं हो तो यह शकल कुछ देरके लिये आकाशमें तिरती रहती है और फिर धीरे धीरे खिर जाती है। इसलिये मनुष्य जहां जहां होकर निकलता है वहां वहां अपने विचारकी शकलोंको खोजों छोड़ता जाता है; और जब हम किसी गलीमें होके निकलते हैं तो मानो हम बरावर [पापचिह्न] की तरह दूसरे मनुष्योंके विचारोंके समुंद्रमें चलते हैं। अगर कोई मनुष्य थोड़ी देरके लिये अपने मनको रीता कर ले तो दूसरोंके बचे बचाये विचार उसके रीते मनमें होकर निकल जाया करते हैं, और इनमेंसे बहुतोंका तो केवल थोड़ा सा ही असर होता है, परन्तु कभी कभी कोई ऐसा विचारका आकार [शकल] आ जाता है कि जो उसके ध्यानको खींच लेता है; जिससे उसका मन उसको ग्रहण कर लेता है और उसको अपना लेता है, और कुछ शक्ति अपनी उसमें मिलाकर उसे प्रबल बना देता है, और फिर उसे बाहर फेंक देताहै; और यह फिर किसी दूसरेको लगता है। यों अगर कोई विचार तिरते तिरते किसी मनुष्यके मनमें आजावे तो इस विचारका उसपर भार (जवाबदेही) न

होगा, क्योंकि यह विचार शायद उसका न हो, वरन और किसीका हो; अलबत्ता अगर वह इस संकल्पको स्वीकार कर ले, और उसपर मनन करे, और फिर उसको प्रबल करके बाहर भेज दे, तो इसका भार उसपर निस्सन्देह होगा।

२३—यदि कोई मनुष्य किसी प्रकारका अपने स्वार्थका विचार करता है तो वह उसके चारों ओर फिरता रहता है और बहुतसे मनुष्य अपने मनशरीरोंके चारों ओर ऐसे विचारोंका एक कवच आवरण सा बना लेते हैं। ऐसे कवचसे मानसिक दृष्टि धुमली पड़ जाती है, और इससे दुराग्रह सहजमें ही बन जाता है।

२४—हर एक विचाराकार कुछ समयके लिये एक प्राणी बन जाता है, वह एक भरी हुई बंदूकके समान होता है जो कि छूटनेके लिये अवसर देख रही है। उसका सुभाव यह है कि जिस मनशरीरमें वह लग जाय उसमें अपने जैसे कंपन उत्पन्न करे और यों उसमें अपनेसे मिलता हुआ ख्याल पैदा करे। अगर वह मनुष्य जिसपर यह ख्याल ताक कर फेंका गया है किसी काममें या किसी विशेष सोच विचारमें लगा हुआ हो तो उसके मनशरीरके अणु पहलेहीसे विशेष और दृढ़ रीतिसे कंपन करते हुए होते हैं, और उनपर तत्क्षण बाहरसे प्रभाव नहीं पड़ सकता है। ऐसी दशामें विचाराकार धीरजसे अवसर मिलनेकी बाट देखा करता है और उस मनुष्यके चारों ओर फिरता रहता है, जबतक कि वह इतना

शांत न हो जाय कि यह उसमें घुस सके; फिर यह उस मनुष्य-पर छूट जाता है और छूटते ही नष्ट हो जाता है।

२५—अगर विचार स्वार्थताका हो तो वह ठीक ऐसा ही बर्ताव अपने उत्पन्न करनेवालेसे करता है और अवसर मिलनेपर उसपर छूट जाता है। यदि यह स्वार्थका विचार बुराईका है तो वह मनुष्य यह समझता है कि यह संकल्प किसी बहकानेवाले पिशाचका सुझाया हुआ है, यद्यपि असलमें वह स्वयम् अपने आपको बहका रहा है। प्रायः हर एक खयाल अपना नया आकार (शकल) बनाता है, परन्तु यदि उससे मिलता हुआ कोई विचाराकार उस मनुष्यके चारों ओर पहिलेसे फिर रहा हो और उस विषयका कोई नया खयाल उसके मनमें उठे तो इसका एक नया आकार नहीं बनता, बरन इसका आकार पुराने आकारमें मिलकर उसे प्रबल कर देता है; और इस प्रकार किसी एक बात या विषयपर बहुत समयतक सोच विचार करते रहनेसे कभी कभी अत्यन्त प्रबल विचाराकार बन जाता है। अगर विचार दुष्टताका हो तो ऐसा बिचाराकार एक सचमुच दुष्टशक्ति प्राणी बन जाता है जो शायद कई वर्षतक बना रहता है और इसमें कुछ समयतक सचमुच प्राणधारी जीवकी शकल व शक्तियां रहती हैं।

२६—ये सब जिनका वर्णन ऊपर हुआ है, मनुष्यके साधारण बिचार हैं जो पहलेसे सोचे बिचारे नहीं गये हैं; मनुष्य

जान बूझके भी विचाराकार बना सकता है और उसको दूसरे पर उसकी सहायताके लिये छोड़ सकता है। जगत्की सेवा-करनेवाले जिन जिन परिपाटियोंपर काम करते हैं, उनमेंसे एक यह भी है। यदि किसी मनुष्यपर प्रबल विचारकी निरंतर धार चतुराईसे डाली जाय तो यह उसको बहुत सहायता पहुँचा सकती है। प्रबल विचाराकार एक सचमुच रक्षा करनेवाला देवता बन जाता है और अपने पात्रको अपवित्रतासे, क्रोधसे, या भयसे रक्षा करता है।

२७—इस विषयकी एक मनरञ्जन [दिलचस्प] शाखा यह है कि भांति भांतिकी जातिके बिचाराकार जो जो शकलें और रङ्ग धारण करते हैं, उनका अध्ययन किया जावे, रंगोंसे यह सूचना होती है कि विचार या ख्याल किस जातिका है, और ये उन रंगोंसे मिलते हैं, जो हमारे शरीरमें होते हैं और जिनका कि पहले वर्णन हो चुका है। शकलें अनन्त प्रकार-की होती हैं परन्तु इनकी बनावटके ढङ्गसे किसी न किसी रीतिसे प्रायः यह दरस जाता है कि जिस विचारको ये प्रकट करती हैं, वह किस किस्मका है।

२८—यदि विचार किसी विशेष ढङ्गका हो, जैसे कि प्रीति या घृणा (ग्लानि) का, भक्ति या शंकाका, क्रोध या भय-का, अभिमान या ईर्षाका, तो इससे शकल ही नहीं बनती, बरन उससे किरणोंकी भांत एक तरंग भी चारों ओर फैलती है। इस बातसे कि इन विचारोंमेंसे हरएक किसी विशेष

रंगसे जाहर होता है यह सूचना होती है कि विचार मन-शरीरके किसी विशेष विभागके द्रव्यके कम्पनके रूपमें प्रकट होता है। यह कम्पन आस-पासके मनलोकके द्रव्यमें ठीक उसी प्रकार लग जाता है जैसे कि किसी घंटेके शब्दका कंपन उसके चारों ओरकी हवामें लग जाता है।

२६—यह कम्पनका प्रसार सब ओरको चलता है और जब कभी वह किसी दूसरे ऐसे मनशरीरसे लगता है जो शांत या अनुकूल अवस्थामें हो, तो उससे इस मनशरीरमें भी उसका कम्पन कुछ न कुछ लग जाता है। विचार आकारसे तो उसके विचारका साफ़ और पूरा अनुभव प्राप्त हो जाता है, परन्तु इससे ऐसा नहीं होता, इससे तो केवल उस विचार-की जातसे मिलता हुआ एक और विचार पैदा हो जाता है। इसका उदाहरण यह है कि अगर विचार भक्तिका हो तो जिस जिसके मनशरीरमें उसकी तरंगें लगेंगी उसमें भक्तिका भाव तो पैदा होगा परन्तु यह भक्ति हरएकमें अपने अपने इष्टदेवके लिये होगी। इसके विपरीत विचाराकार तो केवल एक ही मनुष्यको पहुंचता है, परन्तु इससे उस मनुष्य (यदि वह अनुकूल अवस्थामें है) को केवल सामान्य भक्तिका भाव ही नहीं प्राप्त होगा, किन्तु उसको उस देवकी ऐसी मूर्तिका भी अनुभव हो जायगा कि जिसकी पूजाकी भावना प्रारम्भमें उस मनुष्यके मनमें थी कि जिससे विचाराकार उत्पन्न हुआ था।

३०—यदि कोई मनुष्य नित्य पवित्र अच्छे और दृढ़ विचारोंका सोच विचार किया करता है, तो ऐसे करनेमें वह अपने मनशरीरके ऊंचे हिस्सेको काममें लाता है। साधारण लोगोंमें यह हिस्सा सर्वथा काममें नहीं आता और निरा मुँदा हुआ* होता है। इसीलिये लिये ऐसा मनुष्य संसारमें भलाईका एक खम्भ है, और उसके उन सब पड़ोसियोंको उससे बहुत लाभ पहुंचता है जिनमें नेकीके किसी प्रकारके भाव स्वीकार करनेकी योग्यता है। क्योंकि जो लहरें वह भेजता है, उनसे इनके मनशरीरोंका एक नया और ऊँचा भाग जागने लगता है, और इसका यह फल होता है कि उनको सोच विचार करनेको नये नये विषय सूझने लग जाते हैं।

३१—यह संभव है कि यह विचार उभरनेपर ऐसा न निकले जैसा कि असलमें भेजनेवालेके पाससे चला था, अर्थात् उभरनेपर उसमें कुछ हेर फेर हो सकता है, परंतु विचार (खयाल) की जात नहीं पलटेगी। ब्रह्मविद्यापर विचार करनेसे जो तरङ्गें पैदा होती हैं उनसे यह जरूर नहीं है कि आस पासके मनुष्योंमें ब्रह्मविद्याके ही विचार फैलें; परंतु इन तरंगोंसे उनमें पहलेके देखते अधिक उदार और ऊंचे विचार निस्संदेह पैदा हो जावेंगे। इसके विपरीत जो विचाराकार ऐसे देशकालमें बनेंगे यद्यपि उनका असर तरङ्गोंके असरसे विस्तारमें थोड़ा होगा, तथापि वे होंगे स्पष्ट। ये

* अविकाशित।

वचाराकार लगेंगे उन्हीं मनुष्योंको जो कुछ न कुछ उनसे सानुकूल हैं, परंतु इनसे उनमें ब्रह्मविद्याके अलग २ विषयों-पर स्पष्ट २ भाव उत्पन्न होंगे।

३२—रंगोंके वासनाशरीरमें वैसेही अर्थ होते हैं जैसे कि और भी ऊंचे शरीरोंमें, परंतु ये उनसे कई सप्तक नीचे हैं, और हमारे स्थूल लोकके रंगोंसे अधिकतर नगीच (नजदीक) मिलते हैं। वासनाशरीर हमारे काम क्रोधादि वेगों और भावनाओंका वाहन है, इसलिये इसमें ऐसे नये रंग भी दिख-लाई पड़ते हैं कि जो मनुष्यके नीच भावनाओंके सूचक होते हैं, और जो ऊंचे लोकोंमें नहीं प्रगट होसक्ते हैं। जैसे कि चमकीले किरमिची लाल रंगसे विषयभोगकी वासनाकी सूचना होती है, और काले बादल, द्रोह और घृणाको जतलाते हैं। एक निराली भांतका ऊदा खाकी रँग भयको जतलाता है और अधिक काला भाँतका खाकी जो कि अँडाकारके चारों ओर क्रमसे भारी छल्लोंके रूपमें दिखलाई पड़ता है, प्रायः उदासी दरसाता है। चिड़चिड़ापन वासनाशरीरमें छोटे २ गुलनारके रंगके छींटोंसे जतलाया जाता है, और हरएक छींटा अलग अलग क्रोधकी एक छोटी लहरकी सूचना करता है। जलनकी सूचना एक निराले मटिया हरे रंगसे होती है जिसमें कि वैसेही गुलनारके छींटे प्रायः भरे हुए होते हैं। वासना-शरीर लंबाई चौड़ाई और शकलमें उन शरीरोंका सा होता है जिनका कि अभी वर्णन हुआ है और साधारण मनुष्यमें

इसकी शकल प्रायः कटीछटी होती है; परंतु जंगली मनुष्यके यह बहुधा बहुत ही बेडौल होती है, और ऐसा दिखलाई पड़ता है कि अधम गुणोंके रंगोका चक्कर खाता हुआ बादलसा है।

३३—यह वासनाशरीर यों तो असलियतमें शांत कभी नहीं होता, परंतु जब कि थोड़ा बहुत शांत होता है तब जो रंग इसमें दिखलाई पड़ते हैं वे ऐसी वासनाओंको दरसाते हैं जिनका उसको अधिकतर व्यसन है। जब कि मनुष्यमें किसी एक वासनाका वेग आता है तो उस वासनाका कंपन थोड़ी देरके लिये उसके शरीर भरमें छा जाता है। जैसे अगर यह वेग भक्तिका हो तो, उसका सारा वासनाशरीर आसमानी रंगसे तमतमाने लगता है, और जब तक यह भावना प्रचंड बनी रहती है तबतक साधारण रंग इस आसमानी रंगमें केवल अपनी झाँई डाल देते हैं या उसमें होकर इनकी हलकी झिलक दिखलाई पड़ती रहती है; परंतु थोड़ी देरमें ही इस भावनाका वेग शांत हो जाता है, और तब साधारण रंग फिर साफ़ दिखाई देने लग जाते हैं। परंतु वासनाशरीरका वह भाग जो साधारणमें आसमानी होता है इस वेगसे आकारमें कुछ बढ़जाता है। यों जिस मनुष्यमें ऊंची भक्तिकी भावना बहुधा रहा करती है उसके वासनाशरीरमें नीले रंगका विस्तार सदाके लिये बढ़जाता है।

३४—जब कि भक्तिकी भावनाका वेग किसी मनुष्यपर

आता है तो बहुधा उसके साथ भक्तिके विचार भी आते हैं। यद्यपि ये भक्तिके विचार असलियतमें मानसिक शरीरमें बनते हैं तो भी इनके चारों ओर वासनालोककी बहुतसी सामग्री खिंच आती है, जिससे इनका प्रभाव दोनों लोकोंमें रहता है, इन दोनों लोकोंमें कँपनकी वे किरणें भी होती हैं जिनका कि वर्णन पहिले हो चुका है, और यों भक्त मनुष्य भक्तिका एक केन्द्र बन जाता है, और उसके विचार और वासनाएं दूसरे लोगोंको लगती रहती हैं; और ऐसा ही असर प्रीति क्रोध और उदासीमें ही नहीं, किंतु और सब वासनाओंमें भी होता है।

३५—वासनाके वेगका तो मनशरीरपर अधिक असर नहीं पड़ता, परंतु थोड़ी देरके लिये इससे यह होजाता है, कि मनशरीरसे कोई क्रिया पार होकर स्थूल भेजे तक प्रायः पहुँच नहीं सक्ती। इसका कारण यह नहीं है कि मनशरीरपर कोई असर पड़ा है, वरन यह है कि वासनाशरीर इस मनशरीर और स्थूल भेजेके बीचमें एक दूसरेका संदेशा भुगतानेके लिये पुलका काम देता है, और अगर किसी एक वासनाके वेगमें एक सुर होकर यह वासनाशरीर सारा लहरा रहा हो तो उसमें होकर कोई दूसरी लहर जो उस सुरके मेलकी न हो पार नहीं हो सक्ती।

३६—वासनाशरीरके स्थायी रंग मनशरीरमें भी लग जाते हैं। परन्तु मनशरीरमें जो रंग इनसे पैदा होते हैं वे चमक

दमकमें कई सप्तक ऊंचे होते हैं; यह ठीक ऐसी ही बात है कि जैसे किसी बाजेपर अगर कोई स्वर बजाया जाय, तो उसके ऊपरके सप्तकोंका भी वही स्वर बजने लग जाता है। ठीक इसी प्रकार मनशरीरका असर भी कारण शरीरपर होता है; और यों सबके सब सद्गुण जो नीचेकेशरीरोंमें प्रकाशित होते हैं वे जीवात्मामें सदाके लिये क्रम क्रमसे जमते जाते हैं। दुर्गुण इस प्रकार नहीं जम सक्ते, क्योंकि इन गुणोंके रंगोंके कंपन ऐसे हैं कि उत्तम मनके अणुओंमें जिनका कि कारण-शरीर बनता है इनकी गति नहीं चल सक्ती है।

३७—अभीतक हमने उन शरीरोंका वर्णन किया है कि जिनके द्वारा अपने अपने लोकमें जीवात्माका प्रकाश होता है, ये वे शरीर हैं कि जिनको जीवात्मा अपने आप बना लेती है; परन्तु स्थूल लोकमें ऐसा शरीर होता है कि जो जीवात्माके लिये उन नियमोंके अनुसार प्रकृति बना देती है, जिनका कि वर्णन आगे किया जायगा। ये शरीर भी एक रीतिसे जीवा-त्माका प्रकाशक है, परन्तु इससे उसका पूर्ण प्रकाश नहीं होता। साधारण जीवनमें हमें इस स्थूल (भौतिक) शरीरका केवल छोटासा भाग (हाड़मासका) दिखलाई देता है अर्थात् वह भाग जो कि भौतिक अणुओंमेंसे केवल ठोस और द्रव अणुओंका बनता है। भौतिक शरीरमें तो सात प्रकारके अणु होते हैं, और ये सबके सब भौतिक शरीरके जीवनमें काम आते हैं, और उस जीवनके लिये इन सबका गौरव बराबर है।

३८—भौतिक शरीरका वह भाग जो अदृश्य है अर्थात् दिखलाई नहीं पड़ता है उसको हम प्राणमय कोष अर्थात् आकाशिक छायादेह कहते हैं। इसको छायादेह यों कहते हैं कि आकार और शकलमें यह ठीक उस स्थूलशरीरकीसी है जिसको हम देख सकते हैं, और इसको आकाशिक यों कहते हैं कि यह उस भांतके सूक्ष्मतर अणुओंका बना हुआ है, कि जिसके कंपनसे उजेला आंखकी पुतलीतक पहुंचता है। (ये असली आकाशिक वायु अर्थात् मूल प्रकृतिके अणुसे जुदी है कि जिसके अभावका नाम तत्त्व है) * स्थूल शरीरका यह अदृश्य भाग हमारे बड़े कामका है, क्योंकि इसीमें होकर प्राणकी लहरें आती हैं जिनसे शरीर जीता है और यह हमारे विचार और वासनाकी लहरोंको वासनाशरीरसे स्थूल (दिखलाई पड़ने वाले) भौतिकशरीरतक लानेमें पुलका काम देता है, और इसलिये इसके विना जीवात्मा अपने सिरके भीतरके भेजेके ज्ञानतंतुओंसे काम नहीं ले सक्ती।

३९—भौतिक शरीरके सदा बदलते रहनेमें ही उस भौतिक

* ऐसा माना गया है कि आदिमें एक रस आकाशवायु सर्वत्र भरी हुई थी, और जब सृष्टिके आरम्भमें ब्रह्माका प्रवाह आया तब उस वायुमें पहले ही छोटे छोटे भंवरसे पड़ गये और इन भंवरोंके बीचमें खाली शून्य रहा और आसपास आकाशवायु बनी रही ये ही शून्य गर्भित भंवर अर्थात् आकाशके अभाववाले बुदबुदे आदि लोकके तत्त्व बने; फिर इनमेंसे बहुत बहुतसे मिल-कर नीचे लोकोंके तत्त्व बनते गये जैसा कि पृष्ठ (२९, ३० और ६०) में लिखा है।

शरीरका जीवन है, और इसके जीते रहनेके लिये इसे तीन भांतके पोषणकी निरन्तर चाहना रहती हैं। पहले इसको पचानेके लिये भोजन, और दूसरे स्वांस लेनेके लिये वायु और तीसरे चूसनेके लिये प्राण चाहिये। यह प्राण असलियतमें एक शक्ति है परन्तु जब प्रकृतिका वेठन इसपर चढ़ जाता है तब यह हमको तत्त्वविशेष या परमाणु सा दिखलाई पड़ता है, जो कि उन सब लोकोंमें उनके परमाणुओंके रूपमें पाया जाता है, कि जिनका हम वर्णन कर आये हैं। इस समय हमारा प्रयोजन केवल प्राणके उस रूपसे है, जो कि भूलोकके सबसे सूक्ष्मविभागमें पाया जाता है। जिस रीतिसे लोहू नाड़ियोंमें घूमता है वैसे ही प्राणवायु तंतुओं (स्नायुओं) में बहता है, और जैसे कि लोहूके बहावमें यदि कोई विकार हो जाय तो भौतिक शरीरमें तत्काल उसका असर हो जाता है, ठीक वैसे ही अगर प्राणके बहाव या चुसनेकी क्रियामें थोड़ी सी भी विषमता हो जाय तो उससे भौतिक शरीरके सूक्ष्मभाग (प्राणमय कोष) पर असर पड़ जाता है।

४०—प्राण एक शक्ति है जो आदिमें सूरजसे निकलती है। जब सबसे अधिक सूक्ष्म भौतिक अणुओंमें यह प्राण भर जाता है तब वह अपने चारों ओर छः दूसरे अणु खींच लेता है, और अपनेको एक प्राण वायुका तत्त्व बना लेता है। प्राणकी असली शक्तिके फिर सात विभाग हो जाते हैं, और हर एक अणुमें प्राणका अलग अलग भार हो जाता है। यह तत्त्व जो

इस प्रकार बना, तिल्लीके प्राणमय भागमें होकर मनुष्यके शरीरमें यह घुस जाता है। फिर वहां इसके अलग अलग भाग हो जाते हैं, और ये सातों प्राण इस स्थूल शरीरमें अपने अपने नियमित भागोंमें अलग अलग तत्काल वहकर आ जाते हैं। भौतिक शरीरके प्राणमय कोषमें शक्तिके सात केंद्र अर्थात् चक्र हैं, और उनमेंसे एक तिल्ली भी है। हमारे सब शरीरोंमें हर एकमें ऐसे सात केंद्रोंका चैतन्य होना आवश्यक है, और जब ये चैतन्य हो जाते हैं तो वे दिव्यदृष्टिसे दिखाई पड़ने लगते हैं। वे प्रायः उथले भँवरसे दिखलाई पड़ते हैं, क्योंकि वे ऐसे बिंदु हैं कि जिनमें होकर ऊंचे (सूक्ष्म तर) शरीरोंसे निकली हुई शक्ति, नीचे (स्थूल तर) शरीरोंमें आती है। भौतिक शरीरमें ये केंद्र इस भांत हैं। (१) रीढकी पेंदीपर (मूलाधार) (२) सूर्य्यचक्र (नाभिपर) (३) तिल्लीपर (४) (हृदयके ऊपर) (५) कंठपर (६) दोनों भवोंके बीचमें (भृकुटी) (७) सिरकी चोटीपर। इनके सिवाय सोते हुए केंद्र और भी हैं, परन्तु उनका जगाना अनुचित है।

४१—सब ऊँचे (सूक्ष्मतर) शरीरोंके आकार दिव्यदृष्टिसे अंडाकृत दिखलाई पड़ते हैं। परंतु जिस द्रव्यसे ये बने हैं वह इस अंडेमें सब ठोर एकसा फैला हुआ नहीं है। भौतिक शरीर इस अंडाकारके मध्यमें है। भौतिक शरीर भुवर्लोकके द्रव्य अर्थात् वासना वा जलतत्त्वको जोरसे खींचलेता है, और इसी रह वासनातत्त्व मनलोकके द्रव्य अर्थात् अग्नितत्त्व-

को जोरसे खींचलेता है। इसलिये वासनाशरीरके द्रव्यका बहुतसा भाग स्थूलशरीरके भीतर इकट्ठा हो जाता है, और ऐसी ही व्यवस्था मनशरीरकी है। अगर हम किसी मनुष्यके वासनाशरीरको उसके स्थूलशरीरसे अलग वासनालोकमें ही देखें तो भी हमको वासनिक द्रव्य (अणु) इकट्ठे हुए ठीक स्थूल शरीरकी शकलमें दिखलाई पड़ेंगे; परन्तु यह द्रव्य अधिक लचलचा है, इसलिये हमको देखनेमें ऐसा आता है कि अत्यन्त हलके कुहरके अंडाकारके बीचमें गहरे कुहरका बना हुआ एक शरीर है। ऐसी ही व्यवस्था मनशरीरकी है। इसलिये वासनालोकमें या मनलोकमें अगर हमको कोई हमारी जान पहचानका मिले तो हम उसकी शकलसे उसको ऐसे ही तत्काल पहचान लेंगे, जैसे कि स्थूल लोकमें।

४२—यों मनुष्यकी असली रचना इस भांत है कि पहले तो वह ईश्वरका अंश अर्थात् दैवी चिनगारी है। जीवात्मा एक अधूरा प्रकाश इसी ईश्वरांशका है, और इसलिये प्रगट किया गया है कि वह (जीवात्मा) क्रमोन्नतिकी परिपाटीमें आवे, और अपने संचित अनुभवोंसे जो सद्गुण पैदा हुए हों उस कमाईको लेकर ईश्वरांशमें लौटकर आनंदसे मिल जायं। इसी अभिप्रायसे जीवात्मा भी ऐसेही अपनेमेंसे कुछ अंश नीचे लोकोंमें डालता है। इस अंशको हम ममताका स्वांग या कामात्मा कहते हैं, क्योंकि यह शरीर एक भेष है जिसे जीवात्मा उस समय धारण करती है जब

कि वह अपने निजलोकसे नीचे लोकोंमें अपनेको प्रकट करना चाहती है। ठीक जिस प्रकार कि जीवात्मा ईश्वरांशका एक छोटा अंश और अधूरा प्रकाश है, उसी प्रकार जीवात्माका यह कामात्मा भी एक छोटा अंश और अधूरा प्रकाश है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि जिसको हम साधारण रीतिमें मनुष्य समझते हैं वह असलियतमें केवल एक टुकड़ेका टुकड़ा है।

४३—यह कामात्मा तीन शरीर या वाहन धारण करती है, एक मानसिक दूसरा वासनिक और तीसरा भौतिक। जब तक कि मनुष्य इस स्थूल पृथ्वीपर जीता है और जागता होता है तब तक वह अपने स्थूल शरीरसे बंधा हुआ है, क्योंकि वह अपने वासनिक और मानसिक शरीरोंको तो अपने स्थूल शरीरसे मिलनेके लिये केवल पुलोंकी नांई काममें लाता है। स्थूल शरीरके दोषोंमेंसे एक यह है कि वह जल्द थक जाता है, और इसको समय समयपर आराम करनेकी चाहना (जरूरत) होती है। हर रातको मनुष्य सोनेमें इस स्थूल शरीरको छोड़ देता है, और अपने वासना शरीरमें हट जाता है। यह वासनाशरीर थकता नहीं है और इसलिये उसे नींद नहीं चाहनी पड़ती। स्थूल शरीरकी इस नींदमें मनुष्य वासनालोकमें चाहे जब चल फिर सकता है, परन्तु कितनी अधिक उसकी उन्नति हो चुकी है, उतना ही वह दूर जा सकता है। निरा जंगली मनुष्य प्रायः अपने सोते हुए स्थूल शरीरसे कुछ मीलोंसे अधिक दूर नहीं जा

सक्ता, बहुत करके तो इतना दूर भी नहीं जा सक्ता और यहां उसका बोध भी अत्यन्त मन्द होतां है।

४४—पढ़ा लिखा मनुष्य तो वासनाशरीरमें प्रायः जहां चाहे वहां जा सकता है, और वासनालोकमें उसे बोध भी बहुत अधिक होता है, परन्तु अपने स्थूल शरीरके सोते हुए जो कुछ उसने देखा या किया है उसकी याद जागनेपर बनाये रहनेकी शक्ति प्रायः उसमें नहीं होती है। कभी कभी कोई बात जो उसने सोतेमें देखी या की हो या उसपर बीती हो उसको याद भी रह जाती है, और तब यह जोरका स्वप्न कहलाता है। बहुधा तो उन बातोंकी मंद सी याद जो जागते हुए की हों और वे बातें जो भेजेके प्राणमय भागपर बाहरसे खुबी हों, सपनेकी मंद यादसे ऐसी घिलमिल हो जाती है कि छुट नहीं सकती। यही कारण है कि साधारण सपने घिलमिल और प्रायः बे जोड़ होते हैं। उन्नत मनुष्य वासनालोकमें भी उतना ही पूरा सचेत और उद्योगी हो जाता है जितना कि भूलोकमें, और जो कुछ वासनालोकमें वह करता रहता है उसकी पूरी पूरी याद भूलोकमें ले आता है; अर्थात् दिन रातके चौबीस घण्टोंमें उसकी चेतना लगातार बनी रहती है और उसका बोध कभी जाता नहीं रहता है और इसलिये यही व्यवस्था उसकी जन्म भर ही नहीं, किन्तु मरनेपर भी बनी रहती है।

अध्याय छठा।

मौतके पीछेका वृत्तान्त।

मौत स्थूल शरीरके उतार डालनेको कहते हैं, परन्तु ऊपरका वस्त्र उतार डालनेसे स्थूल मनुष्यमें जितना भेद पड़ता है उससे अधिक भेद जीवात्मामें मौतसे नहीं पड़ता। स्थूल शरीर उतार डालनेके पीछे जीवात्मा अपने वासनाशरीरमें तबतक रहता है, जबतक कि वह शक्ति खर्च न हो जाय जो कि उसके ऐसी वासनाओं व काम क्रोध आदि वेगोंसे उत्पन्न हुई हैं कि जिनको उसने अपने जीते जी सेवन किया है। जब यह शक्ति खर्च हो चुकती है, तब दूसरी मौत होती है और वासनाशरीर भी उससे उतर जाता है और उसे यह जान पड़ता है कि वह मन शरीरमें और नीचेके मनलोकमें जी रहा है। वह इस अवस्थामें उस समय तक बना रहता है जबतक कि वे विचारशक्तियां जो कि उसके भूलोक और वासनालोकके जीवनमें उत्पन्न हुई हैं, खिर न जायं। इसके पीछे वह अपने तीसरे शरीरको भी छोड़ देता है, और यों फिर कोरा जीवात्मा रहकर अपने कारणशरीरमें निवास करता हुआ अपने निजलोकमें बना रहता है।

२—इसलिये ऐसी मौत जैसी कि साधारण लोग मानते

हैं कोई वस्तु नहीं है। जीना अखण्डित है, और उसमें केवल क्रमसे अवस्थाएं बदलती हैं; और ये अवस्थायें तीन लोकमें एकके पीछे दूसरी भोगी जाती हैं। जैसे जैसे मनुष्य उन्नतिमें बढ़ता जाता है वैसे ही इन तीनों लोकोंमें जितने २ समय तक वह रहता है उनमें हेर फेर होता जाता है। जंगली मनुष्य प्रायः निरन्तर भूलोकमें जीवन व्यतीत करता है, क्योंकि हर स्थूलजीवनके अन्तमें वह केवल थोड़ेहीसे वर्ष वासना-लोकमें रहता है। जैसे जैसे वह उन्नति करता जाता है, वैसे ही उसकी वासनालोकमें जीवनकी अवधि बढ़ती जाती है, और जैसे जैसे उसमें समझ खिलती जाती है, और सोचने विचारनेकी योग्यता होती जाती है वैसे ही वह मनलोकमें भी कुछ कुछ समय व्यतीत करने लगता है। सभ्य जातियोंमेंसे साधारण मनुष्य स्थूललोक और वासनालोकसे मनलोकमें अधिकतर समयतक रहता है, सच तो यह है कि मनुष्य जितनी जितनी उन्नति करता जाता है उतनी ही उसकी जीवनकी अवधि मनलोकमें बढ़ती जाती है, और वासनालोकमें घटती जाती है।

३—वासनालोककी जीवन अवस्था उन सब वासनाओंका विपाक (नतीजा) है कि जिनमें स्वार्थका अंश होता है। अगर ये वासनाएं निरे ही स्वार्थकी हों तो वे उसको वासनालोकमें बड़ी क्लेशकी दशामें डालती है, अगर वासनाएं भलाई और नर्मीकी हों तो उनमें

स्वार्थका टांका होते हुए भी उनसे मनुष्यको वासनालोकमें कुछ सुख मिलता है, परन्तु यह थोड़े समयके लिये होता है। मनलोक (स्वर्ग) की जीवन अवस्था उन विचारों और वासनाओंका विपाक है जिनमें स्वार्थका लेशमात्र नहीं हो; इसलिये मनलोकके जीवनमें केवल आनन्द ही आनन्द हो सकता है। वासना* लोककी जीवन अवस्था मनुष्य अपने लिये या तो दुःखकी बना लेता है या थोड़े बहुत सुखकी, और यह वह है जिसको ईसाई मतवाले पापमोचन स्थान कहते हैं। अधम मानसिक लोकका जीवन सदा अखंड सुखका है, और यह स्वर्ग कहलाता है।

४—मनुष्य अपने पापमोचन (प्रेत अवस्था और पितृ अवस्था) और स्वर्ग आप ही बनता है, और ये स्थान नहीं हैं किन्तु मनुष्यके मन या चेतनकी दशाएं हैं। नर्क (अनन्त) कहीं नहीं है, यह तो केवल पादरियोंकी मनकी गढ़ी हुई मिथ्या कल्पना है; परन्तु यदि किसी मनुष्यकी रहन मूढ़ता (वेवकूफी) की हो तो इससे उसको ऐसी प्रेत अवस्था मिलेगी कि जो बहुत दुःखकी और बहुत दिनोंतक चलेगी। न तो प्रेतअवस्था सदा रहनेवाली है और न स्वर्ग, क्योंकि यह नहीं हो सकता है कि नियत या अंतवाले कारणसे अनन्त फल उत्पन्न हो सके। मरनेके बाद इन लोकोंमें अलग

* इसके दो भाग हैं जिनमेंसे नीचेवालेको प्रेत अवस्था और ऊपरवालेको पितृअवस्था कहते हैं।

अलग मनुष्योंको जो समय व्यतीत करना पड़ता है, उन समयोंमें इतना अधिक अंतर होता है कि यदि इनकी अवधिकी कोई संख्या नियत की जाय, तो वह ठीक नहीं निकलेगी। यदि हम बीजकी कक्षाके नीचे भागके सामान्य मनुष्यको लें, जैसा कि छोटा दूकानदार या किसी दूकानका नौकर; तो उसके जीवनकी सामान्य अवधि प्रायः वासनालोक (प्रेतलोक पितृलोक) में चालीस वर्ष, और मनलोक (स्वर्गमें) दो सौ वर्षके लग भग होगी। परंतु परमार्थी और पढ़े लिखे मनुष्यको शायद बीस वर्ष वासनालोकमें और हजार वर्ष स्वर्गमें लगेंगे। और जो मनुष्य विशेष उन्नति कर चुका हो तो वासनालोकमें शायद उसे थोड़ेसे दिन या घंटे ही लगेंगे, परंतु स्वर्गमें निवास पंद्रह सौ वर्ष तक रहेगा।

५—इन दिनों लोकोंकी अवधियोंके समयमें ही केवल अंतर नहीं होता, किंतु उनकी व्यवस्थामें भी बहुत भेद होता है। जिस द्रव्यके ये सब शरीर बने हुए हैं, वह मरा हुआ द्रव्य नहीं है, परंतु जानदार है, और यह बात ध्यानमें रखनेके योग्य है। स्थूलशरीर कणोंका बना हुआ है, और इनमेंसे हरएक कण एक जुदा नन्हा प्राणधारी है, कि जिसमें दूसरे प्रवाहसे उत्तेजना है; जो कि ईश्वरके दूसरे स्वरूप अर्थात् विष्णुसे निकलता है। ये कण कई भांतिके होते हैं, और कई प्रकारके काम करते हैं, और अगर मनुष्य चाहे कि वह भौतिक शरीरकी

क्रियाको समझ जाय, और इस शरीरमें निरोगी रहने लगे तो उसे ये सब बातें ध्यानमें रखना चाहिये।

६—यही बात वासनाशरोर और मनशरीरमें लग सक्ती है। कणमय प्राण जो इन शरीरोंमें व्याप्त हैं उनमें अभीतक विचारशक्ति या समझ या अकलका लेशमात्र नहीं है, परंतु इन कणोंमें तीखा जानवरोंका सा सहज बोध (पैदायशी अकल हैवानी) होता है, जो इनको सदा उन्नतिकी ओर झुकाता है। इन शरीरोंके अणुओंमें जो जान है वह सृष्टिरचनाके दूसरे अर्थात् (विष्णु) के प्रवाहके उस हिस्सेकी है जो कि नीचे उतरती हुई क्रमसे अणुओंमें पैठती जाती है, इसलिये इसकी उन्नति इसीमें है कि गाढ़ेसे गाढ़े द्रव्य-के रूपोंमें वह उतरती जाय, और उनमें होकर अपनेको प्रगट करना सीखती जाय। मनुष्यकी उन्नति ठीक इससे उलटी है। वह पहले द्रव्यमें गहरा पैठ चुका है, और अब उसमेंसे निकल कर उस सोतकी ओरको चढ़ रहा है कि जहाँसे यह आदिमें आया था। इसी कारण मनुष्यके भीतरकी जीवा-त्मामें और उस प्राणमें जो उन कणोंमें रहता है कि जिससे उसके शरीर बने हैं लगातार विरोध रहता है, क्योंकि इस प्राणकी प्रवृत्ति नीचे उतरनेकी है, और जीवात्माकी प्रवृत्ति ऊपर चढ़नेकी है।

७—वासनाशरीरके द्रव्यको (या यों कहें कि वह प्राण जो उसके कणोंमें है,) उन्नतिके लिये ऐसे कंपनोंकी चाहना है

कि जो जहां तक हो सके अधिकसे अधिक भांतके और नीचेसे नीचे या स्थूल प्रकारके हों। वासनाशरीरके इस कणमय प्राणकी उन्नतिमें आनेका क्रम यह होगा कि वह प्राण अब स्थूलकणोंमें प्रवेश करे और उनके मंदतर कंपनोंसे परिचित हो जाय; और स्थूल पदार्थमें प्रवेश होनेके लिये इसको नीचसे नीच वासनिक कंपनोंकी चाहना होती है। इस कणमय प्राणमें ऐसा साफ बोध तो है नहीं, कि जिससे इस मतलबके लिये वह प्रबन्ध रच सके; परंतु वह अपने सहज सुभावसे इतना जान लेता है कि इन कंपनोंको प्राप्त करनेकी सुगमसे सुगम कौन सी रीति है।

८—स्थूल शरीरके कणोंकी नाँई वासनाशरीरके कण भी सदा बदलते रहते हैं; परंतु ऐसा होते हुए भी इन वासनिक कणोंके समष्टि (इकट्ठे समूह) में जो प्राण या जीवन शक्ति होती है उसमें अपने पिंडका बोध होता है, अर्थात् उसको यह ज्ञान होता है कि मैं भी कुछ समयके लिये एक प्रकारका जीवधारी हूँ, परंतु यह ज्ञान केवल अत्यन्त भ्रम सा होता है। इस जीवधारीको यह ज्ञान नहीं होता है, कि मैं किसी मनुष्यके वासनाशरीरका एक टुकड़ा हूँ; यह इस बातको सर्वथा नहीं समझ सक्ता है कि मनुष्य क्या वस्तु है, परंतु उसे ऐसा भ्रमसा होता है कि आकाशमें खुले फिरनेमें जो कंपन उसे मिलते उनकी अपेक्षा (बनिसबत) इस हालके देश कालमें उसे बहुत और तीक्ष्णतर मिल जाते हैं। आकाशमें फिरनेमें

तो इसे मनुष्यके काम क्रोधादि वेगों और वासनाओंके कंप-नोंकी किरणें दूरसे आकर कभी २ अकस्मात् ही लगसक्ती हैं; परंतु अब तो यह उन किरणोंके ठीक बीचमें है, इसलिये अब ये किरणें उससे बिना लगे रह नहीं सक्ती, और ये उसके लगती भी जोरसे हैं। इसलिये इसे यह देश काल अच्छा मालूम होता है, और वह यह यत्न करता है कि यह देशकाल बना रहे। इसे यह जान पड़ता है कि मैं किसी ऐसी वस्तुसे लगा हुआ हूं जो मुझसे सूक्ष्मतर है अर्थात् मनुष्यके मनशरीरके कणोंसे; और इसे यह ज्ञान होने लगता है कि अगर मैं किसी यत्नसे इन सूक्ष्मतर वस्तुओंमें भी अपने कंपन लगा सकूं तो मेरे कंपन बहुत तेज और बहुत ठहरनेवाले हो जायंगे।

६—वासनिक कण इच्छाके वाहन होते हैं, और मानसिक कण सोच विचारके वाहन होते हैं, इसलिये इस वासनिक कण समष्टिके प्राणके स्वाभाविक ज्ञानको अगर हम अपनी साधारण बोलीमें वर्णन करें, तो यों कहा जायगा कि अगर वासनाशरीर हमको यह मनवादे कि जो कुछ उस शरीरकी जरूरत है वह हमारी ही जरूरत है, तो उसकी इच्छा पूरी होनेकी अधिक संभावना हो जायगी। इस प्रकार इससे मनुष्यपर, एक हलका दबाव बराबर रहता है; यह इसको तो भूख सी जान पड़ती है परन्तु मनुष्यको यह किसी नीच और अनुचित बातके लिये फुसलानेवाला (लालच) सा भासता है। अगर मनुष्य क्रोधी स्वभावका हो तो उसमें

इसकी प्रेरणा (दवाव) निरन्तर चिड़चिड़ेपनकी ओर रहेगी; अगर वह विषयी हो तो वैसो ही निरन्तर प्रेरणा अपवित्रताकी ओर रहेगी।

१०—जो मनुष्य इस बातको नहीं समझता है वह या तो यह मान लेता है कि यह प्रेरणा मेरे निजके स्वभावकी है और इसलिये यह विचार करने लगता है कि, स्वभाव स्वतः ही पापमय है, या यह मान लेता है कि यह प्रेरणा बाहरसे किसीने की है अर्थात् किसी मन कल्पित शैताननें लुभाया है, ये दोनों कल्पनाएं भूलकी हैं। सच्ची बात इन दोनोंके बीचकी है। यह प्रेरणा स्वाभाविक तो है परन्तु मनुष्यके स्वभावकी नहीं, किन्तु मनुष्यके शरीरके स्वभावकी है, ऐसी इच्छा करना शरीरके लिये स्वाभाविक (कुदरती) भी है और उचित भी है, परन्तु यह मनुष्यके हानिकारक है और इसलिये यही आवश्यक है कि मनुष्य इसे रोके। अगर वह इसे यों रोकेगा अर्थात् अगर वह उन वासनाओंके आधीन बननेसे इनकार करे जो कि उसको सुझाई गई हों तो उसके शरीरमें वे कण जिनसे उन कम्पनोंकी आवश्यकता थी पोषण न मिलनेके कारण सुस्त हो जाते हैं और अन्तमें मुरझा जाते हैं और वासनाशरीरसे छिटककर गिर जाते हैं और इनकी ठोरमें दूसरी भांतिके कण आ जाते हैं जिनका कि कंपन उस कंपनसे अधिकतर मिलता है जो कि मनुष्य अपने वासनाशरीरमें स्वाभाविक होने देता है।

११—जीतेजी मनुष्यकी नीच प्रकृतिसे जो प्रेरणाएं उठती हैं यह उनका समाधान है। अगर मनुष्य इनके आधीन हो जाता है तो ये वहकावटें अधिकसे अधिक प्रवल होती जाती हैं यहां तक कि अन्तमें उसे यह जान पड़ता है कि वह इनको रोक न सकेगा, और इनके साथ तन्मय हो जाता है, और यही ठीक वह बात है जो कि वासनाशरीरके कणोंकी यह अद्भुत अधूरी जीवनशक्ति उससे कराना चाहती है।

१२—स्थूल शरीरके मरनेपर यह वासनाशरीरकी अधूरी जान अपनी मन्द समझसे घवरा जाता है। इसे यह जान पड़ता है कि इसकी अलग व्यक्तिगत स्थिति ही जोखममें है, और अपने वचाने और जहांतक हो सके अपना पद बनाये रखनेके लिये वह सहज स्वभावसे प्रयत्न (कोशिश) करता है। वासनाशरीरका द्रव्य इस स्थूल शरीरके द्रव्यसे अधिकतर ढुलढुला है और यह (वासनिक) बोध वासनिक शरीरके कणोंको पकड़ लेता है, और उनको ऐसे ढङ्गसे स्थापन कर देता (तरतीब देता) है कि जिससे बाहरके धक्कोंको रोक सकें। यह सबसे अधिक गाढ़े कणोंको तो बाहर छोरपर रखकर अपनी रक्षाके लिये एक भांतकी सीप* (निरा बकतर) बना लेता है और बाकी कणोंको इस सीपके भीतर पुट दरपुट लगा लेता है कि जिससे इसका शरीर उतना

* इस सीपको यातना शरीर कहते हैं।

रगड़ रोकनेवाला हो जाय जितनी कि उसमें गुंजायश है और वह अपनी इस शकलको जहांतक हो सके बनाये रक्खे।

१३—इस पुट दर पुट शकल बननेसे मनुष्यके लिये कई नेष्ट (बुरी) बातें उत्पन्न होती हैं। वासनाशरीरकी व इस स्थूल शरीरकी बनावटमें बड़ा फर्क होता है। स्थूल शरीरके बाहरकी वस्तुओंका ज्ञान कोई कोई अंगों द्वारा होता है, जो कि इन्द्रियोंके विशेष विशेष ओजार बन गये हैं, परंतु ऐसी अलग अलग इन्द्रियाँ वासनाशरीरमें नहीं हैं। वासना शरीरमें दृष्टिके बदलेकी, कणोंकी वह शक्ति है कि जिससे इनसे मिलते हुए कणोंके बाहरसे आघातों (धक्कोंका) उत्तर दिया जाता है. जैसे दृष्टान्त यह है, किसी मनुष्यके उसके वासनाशरीरमें वासनालोकके सब उपविभागों (हिस्सों) के कण हैं और इसी कारणसे वह उन सब वस्तुओंको देख सकता है जो कि इन विभागोंमेंसे किसी न किसीके कणोंसे बनी हुई है।

१४—कल्पना करो कि कोई वासनिक वस्तु वासना लोकके उत्तरके दूसरे और तीसरे उपविभागके मिले हुए कणोंसे बनी है तो वासनालोकमें रहनेवाला कोई मनुष्य उस वस्तुको जब ही देख सकेगा, जब कि उसके वासनाशरीरकी सतहपर उस लोकके दूसरे और तीसरे उपविभागके ऐसे कण हों जो कि उन कंपनोंको जो उस वस्तुसे निकलते हों, लेसके; और रख सके। जिस मनुष्यके वासनाशरीरके अमित-बोधने उसके वासनाशरीरके कणोंकी वह यातनिक (रचना)

कर ली है जिसका वर्णन हो चुका है और इस कारणसे जिसके वासनाशरीरपर बाहरकी ओर सतहपर सबसे नीचे विभागके गाढ़ेसे गाढ़े कण स्थापित हो गये हैं उसको उस वस्तुका बोध नहीं हो सकता जिसका ऊपर जिकर हुआ है; ठीक जैसे कि हमको हमारे स्थूल शरीरमें उन हवाओंका बोध नहीं होता कि हमारे आस पास हमारे वायु मंडलमें फिरती हैं, और न उन पदार्थोंका होता है जो केवल आकाश वायुके कणोंसे बने हुए हैं।

१५—स्थूल जीवन अवस्थामें (जीते जी) मनुष्यके वासनाशरीरका द्रव्य सदा चलित रहता है और उसके कण एक दूसरेके बीचमें होकर बहुत कुछ ऐसे निकलते रहते हैं जैसे कि उबलते हुए पानीके कण। इसी कारण किसी क्षण भी यह प्रायः निश्चयसे कहा जा सकता है कि उसके वासनाशरीरकी सतहपर बाहरकी ओर सब प्रकारके कण मिलेंगे और इस लिये जब कि वह नींदमें अपने वासनाशरीरको काममें लावेगा तो यदि कोई वासनिक वस्तु उसके पास आवे तो वह उसे दिखलाई पड़ जावेगी।

१६—मरनेके पीछे अगर वह अपने वासनाशरीरके कणोंकी नई यातनिक रचना (तरतीब) हो जाने देवेगा जैसा कि, अपने अज्ञानके बस साधारण मनुष्य हो जाने देते हैं तो उसकी दशा इस विषयमें पृथक् होगी। इसके तो वासनाशरीरकी सतह केवल नीचेसे नीचे और गाढेसे गाढे कण होंगे इस

लिये इसको बाहरसे केवल इनसे मिलते हुए कणोंका ही बोध हो सकता है; इस कारणसे इसको अपने आस पासका सारा वासनालोक नहीं दिखाई पड़ेगा, किन्तु इसे इस लोकका केवल सबसे नीचा सातवां हिस्सा दिखाई पड़ेगा, और वह भी सबसे गाढ़ा और सबसे अपवित्र। इन भारी कणोंके कंपन केवल निषिद्ध (बुरी) वासनाओं और वेगोंकी, और वासनालोकके निवासियोंमेंसे नीचेसे नीचे जीवोंकी सूचना (खबर) करते हैं। इससे यह बात निकलती है कि इस दशामें मनुष्य वासनालोकके केवल बुरे निवासियोंको तो देख सकता है, और केवल अति नेष्ट और असभ्य वासनाओंका बोध कर सकता है।

१७—इसके चारों ओर दूसरे मनुष्य होते हैं जिनके कि वासनिक शरीर शायद निरे साधारण दरजेके होते हैं; परन्तु उसको तो इन मनुष्योंकी वे ही बातें मालूम या दिखलाई पड़ सकती हैं, जो कि सबसे नीची और असभ्य हैं, और इसलिये उसको ये मनुष्य केवल बुराइयोंसे भरे हुए ऐसे राक्षससे दिखलाई पड़ते हैं कि जिनमें भलाईका लेशमात्र भी न हो। उसके मित्र भी उसको वैसे दिखलाई नहीं पड़ते, जैसे कि पहले दिखलाई पड़ा करते थे क्योंकि इसको अब उनके अच्छे गुणोंके पहचाननेकी सामर्थ्य नहीं रही है। इसलिये इसमें आश्चर्यकी बात नहीं है कि वह वासनालोकको नर्क समझ लेता है; परन्तु यह दोष उसका ही है, न कि किसी रीतिसे

वासनालोकका, कि एक तो उसने अपने शरीरमें उस नीच प्रकारके कण इतने अधिक रहने दिये, दूसरे उसने अपने वासनाशरीरके भ्रमित वोधको अपने ऊपर अधिकार जमा लेने दिया और वासनाशरीरके कणोंकी नवीन यातनाशरीर-कीसी रचना उस विशेष रीतिसे हो जाने दी।

१८—जिस किसीने इन विषयोंको पढ़ा है, वह जीते जी वासनिकशरीरके लुभानेमें नहीं आता है, और न मरनेपर अपने वासनाशरीरके कणोंकी रचनाके क्रममें फेरफार होने देता है, और इसलिये देखनेकी शक्ति उसको वासनालोकके केवल मलिन और नीच भागकी ही नहीं होती, किन्तु सारे वासनालोककी।

१९—वासनालोकमें कई बातें भूलोकसे मिलती हुई हैं। भूलोककी नांई जुदे जुदे लोगोंको और एक ही मनुष्यको भी उसके जीवनमें अलग अलग समयोंपर इसके जुदे जुदे रूप दिखलाई पड़ते हैं। यह वासनाओं और नीच विचारोंका घर है; और इस लोकमें वासनाएं भूलोकसे भी अधिक प्रवल होती हैं। जब कोई मनुष्य जागता हो तब हम उसकी वासनाका वह अधिकतर भाग सर्वथा नहीं देख सकते, क्योंकि वासनाकी शक्ति भेजेके स्थूल कणोंको चलित करनेमें चली जाती है। इसलिये अगर हम यहाँ (भूलोक) में देखें कि कोई मनुष्य प्रेम दिखला रहा है तो हमें उसके प्रेमका पूरा रूप नहीं दिखलाई पड़ता है; परन्तु प्रेमका केवल उतना भाग

दिखलाई पड़ता है जो कि इस सारी क्रियाके करनेके पीछे बाकी रह जाता है। इसलिये वासनाएं वासनालोकमें स्थूल-लोकसे अति विशाल दिखलाई पड़ती हैं। अगर ये वासनाएं वसमें रक्खी जायं तो ऊंचे विचारोंको किसी प्रकार नहीं रोकती हैं इसलिये भूलोककी नांई वासनालोकमें भी मनुष्य चाहे पढ़ने लिखनेके अभ्यासमें और अपने साथियोंको सहा-यता करनेमें लगे और चाहे अपना समय वृथा खोवे और व्यर्थ फिरता फिरे।

२०—चन्द्रमाके घूमनेके घेरेकी मध्यम दूरी, जितनी यहाँसे है लगभग उतनी दूरतक वासनालोक यहांसे फैला हुआ है; और वासनालोकके निवासियोंमेंसे जिस किसीने अपने वासना शरीरके कणोंकी रचनामें हेरफेर नहीं होने दिया है उसके लिये यह सबका सब वासनालोक खुला रहता है, परन्तु बहुतसे लोग तो पृथ्वीके पास ही बने रहते हैं। वासनालोकके जुदे जुदे उपविभागोंके कण आपसमें एक दूसरेके बीचमें विना रोक टोकके पैठे हुए हैं, परन्तु इन सबमें सामान्य रीतिसे यह सुभाव पाया जाता है कि कण जितने ही अधिक गाढे हों उतने ही पृथ्वीके केन्द्रके नगीच बैठ जाते हैं। यह व्यवस्था प्रायः वैसी ही है जैसे एक डोल गदले पानीमें होती है कि जिसमें कई प्रकारके हलके भारी कण भरे हुए होते हैं और पानी जबतक घूमता रहे तबतक ये सब प्रकारके कण डोलभरमें फैले हुए रहते हैं; परन्तु इसपर भी, गाढ़ेसे गाढ़े कण अधि-

कतर तलोंके अत्यन्त नगीच ही पाये जायंगे। यों यद्यपि हमें यह तो सर्वथा नहीं विचार करना चाहिये कि वासनालोकके सब उपविभाग प्याजके छिलकोंके पुटोंकी नांईं एकके ऊपर एक रक्खे हुए हैं; तो भी यह बात सच है कि उन उपविभागोंके कणोंकी मध्यम रचनाका क्रम कुछ कुछ इस ढंगका है।

२१—वासनिक कण भौतिक कणोंके बीचमें ठीक ऐसे पैठे हुए हैं कि मानो भौतिक कण कहीं हैं ही नहीं, परन्तु हर उपविभागके भौतिक कणोंको उससे मिलते हुए उपविभागके वासनिक कणोंसे बड़ा आकर्षण (कशिश) है। इसलिये यह देखा जाता है कि हर भौतिक वस्तुके वासनिक प्रतिरूप (नकल) भी होता है। अगर एक प्याला पानीका तिपाईपर रक्खा जाय तो प्याला और तिपाई तो ठोस भौतिक कणोंके हैं। इसलिये उनमें सबसे नीचे उपविभागके वासनिक कण पैठे हुए हैं। प्यालेमें जो पानी है वह तरल (पतला) है इसलिये उसमें वासनालोकके वे कण पैठे हुए हैं कि जिनको हम वासनिक तरल कह सके हैं, अर्थात् वासनालोकके छठे उपविभागके कण; और हवा जो इन दोनोंके चारों ओर है वायुरूपके भौतिक कणोंकी है और इसलिये उसमें वासनालोकके वायुके कण अर्थात् वासनालोकके पांचवें उपविभागके कण पैठे हुए हैं।

२२—परन्तु जैसे कि हवा, पानी, प्याला और तिपाई इन सबमें भौतिक लोकके वे सूक्ष्मतर कण बराबर पैठे हुए हैं

जिनको कि हम आकाशवायु (ether) कहते हैं ठीक वैसे ही इन वासनिक प्रतिरूपोंमें वासनालोकके ऊपरके उपविभागोंके सूक्ष्मतर वासनिक कण पैठे हुए हैं जो भौतिक उपविभागोंके आकाशवायुके मेलके हैं। परन्तु वासनालोकका ठोस कण भौतिक लोकके सूक्ष्मसे सूक्ष्म आकाशवायुसे भी हलका होता है।

२३—मरनेके पीछे भुवर्लोक (वासनालोक) में पहुँचने-पर अगर किसी मनुष्यने अपने वासनाशरीरके कणोंकी रचनाके क्रममें हेरफेर नहीं होने दिया हो तो उसको स्थूल लोकसे केवल थोड़ा सा ही अन्तर जान पड़ेगा। वह जिधरको चाहे उधरको उड़ तो सकता है, परंतु वह प्रायः उस जगहके आस पास ही बना रहता है कि, जहां वह मरनेसे पहले रहा करता था। वह अब भी अपने घरको, अपने कमरेको, अपने सामानको अपने नातेदारोंको और अपने मित्रोंको देख सकता है। जीते हुए मनुष्य अगर वे ऊंचे लोकोंको नहीं जानते हैं यह समझ लेते हैं कि उनसे वे लोग जाते रहे हैं जिन्होंने अपने स्थूल शरीरोंको छोड़ दिया है; परंतु जो मरगये उन्हें एक क्षणके लिये भी यह नहीं भासता कि, जो जीते हैं वे इनसे खो गये हैं।

२४—मरे हुए मनुष्य वासनाशरीरमें रहते सहते हैं इस-लिये उन्हें उन लोगोंके स्थूल शरीर नहीं दिखलाई पड़ते जिनको वे जीते छोड़ आये हैं परंतु इन जीते हुओंके वासना-

शरीर तो उनको दिखलाई पड़ते हैं और यह वासनाशरीर शकलमें ठीक स्थूलशरीर जैसे होते हैं इसलिये इन मरे हुओंको अपने मित्रोंके अपने पास होनेका पूरा पूरा ज्ञान रहता है। उनको हरएक मित्रके चारोंओर घिरा हुआ एक हल्का चमकदार कुहरका अंडासा दिखाई पड़ता है और अगर वे छान बीन करनेवाले हों तो उन्हें अपने आस-पासकी वस्तुओंमें कुछ और भी फेर फार दिखाई पड़ने लगती है, परंतु इतना तो उन्हें ठीक निश्चय हो जाता है कि, वे किसी दूरके स्वर्ग या नर्कमें तो नहीं चले गये हैं, किन्तु उसी लोक (दुनियां) में बने हुए हैं जिससे कि वे परिचित हैं यद्यपि उन्हें यह भासने लगता है कि वे देखते तो इसे किसी दूसरी निगाहसे हैं।

२५—मरा मनुष्य अपने जीते हुए मित्रका वासनाशरीर चोड़े अपने सामने देखता है, इसलिये यह विचार नहीं कर सकता कि, वह मित्र जाता रहा खोगया है; परंतु जब यह मित्र जागता हुआ हो तो मरा हुआ मनुष्य उसपर कोई असर नहीं कर सकेगा क्योंकि तब उस मित्रका चेतन भूलोकमें है, और उसका वासनाशरीर केवल एक पुलकी नाईं काममें आ रहा है। मरा हुआ मनुष्य इस कारण अपने मित्रके साथ न बात चीत कर सकता है और न उसके ऊंचे विचारोंको पढ़ सकता है; किंतु वह उसके वासनाशरीरके रंगोंके हेर फेरसे अपने उस मित्रके किसी वासनाको जान सकता

है और थोड़ेसे अभ्यास और छान बीन करनेसे वह सहजमें अपने मित्रके उन सब विचारोंका पढ़ना सीख सकता है, जिनमें स्वार्थ या वासनाका लगाव हो।

२६—जब कि मित्र सो जाता है तो यह सारी अवस्था (कैफियत) बदल जाती है। तब तो मित्र भी वासनालोकमें मरे हुए मनुष्यके साथ ही साथ (चैतन्य) हो जाता है, और ये हर एक बात आपसमें ऐसे ही अच्छी रीतिसे कर सकते हैं जैसे कि वे दोनों जीते जी कर सकते थे। जीते मनुष्योंकी वासनाएं उन मरे हुओंके जोरसे लगती हैं, जो कि उनको प्यार करते हैं। अगर जीते हुए मनुष्य शोक करने लगें तो मरे हुओंको निस्संदेह बहुत दुःख होता है।

२७—मरनेके पीछे जो दशाएं होती हैं वे इतनी भांतकी होती हैं कि जिनकी प्रायः गिनती नहीं हो सकतीं; परंतु किसी एक मनुष्यकी मरनेके पीछे क्या दशा होगी यह बात सहजमें हर कोई बतला सकता है जो वासनालोकके समझने और उस मनुष्यके सुभावको जांचनेका परिश्रम उठावे। इस सुभावमें मरनेसे कुछ भी फर्क नहीं पड़ता; मनुष्यके विचार काम क्रोधादि वेग और इच्छाएं ठीक वैसी ही बनी रहती हैं जैसा कि पहले थीं। वह ज्योंका त्यों वही मनुष्य बना रहता है जो कि वह पहले था, केवल उसका स्थूलशरीर चल गया है और उसके सुख या दुःखका निर्णय (जांच) इस

बातसे होता है कि उसके स्थूल शरीरका बिछुड़ना उसे कितना अखरा है।

२८—अगर इसकी लालसाएं ऐसी थी कि जिनके पूरे होनेके लिये स्थूल शरीर चाहना पड़े तो स्यात् उसे बहुत दुःख सहना पड़ेगा। ऐसी लालसासे वासनाशरीरमें कम्पन हुआ करता है और जबतक हम इस लोक (स्थूल लोक) में रहते हैं तब तक इस कंपनका बहुतसा बल स्थूल शरीरके भारी भारी कणोंको हिलानेमें खर्च हो जाता है इसलिये स्थूल लोक (की अपेक्षा) से वासनालोक (प्रेत-पितृ-लोक) में लालसा अत्यन्त अधिकतर प्रबल होती है, और अगर मनुष्यको वासना वसमें रखनेका अभ्यास नहीं हुआ हो और वह लालसा ऐसी हो कि इस नई प्रेत या पितृ अवस्थामें पूरी न हो सकती हो तो इससे उसको बहुत दिन तक बड़ी अचल (तकलीफ) रहेगी।

२६—इसको समझनेके लिये एक घोर शराबी या विषयीका दृष्टान्त लीजिये; उसकी विषय वासना ऐसी है कि जो जीते जी इतनी वेगसे रही है कि उसने बुद्धि विवेकको और लज्जाके और घरके स्नेहके भावोंको दबा लिया है। मरनेपर वासनालोकमें इस मनुष्यको ये वासना प्रायः सौ गुणी अधिक तेज व्यापेगी परंतु वह इसको कुछ भी पूरी न कर सकेगा क्योंकि उसके स्थूल शरीर नहीं रहा है। ऐसी अवस्था सच मुच नर्क ही है और अगर कोई नर्क है तो यह है। परन्तु उसे दण्ड कोई दूसरा नहीं दे रहा है, वह तो अपने ही कर्मका

निरा स्वाभाविक फल भोग रहा है। धीरे २ जैसे समय बीतता जाता है वैसे ही इस वासनाका बल छीजता जाता है परन्तु इसमें होता है उसको भयानक कष्ट, क्योंकि उसे एक २ दिन हजार वर्ष सा जान पड़ता है। समयका अनुमान जैसा कि हमको स्थूल लोकमें होता है वैसा उसको नहीं होता। वह तो समयको केवल अपने वेदनाओंसे माप सक्ता है। इसी बातको तोड़ मोड़ कर यह पाखण्ड खड़ा कर लिया गया है कि दंड निरंतर नर्कका भी होता है कि जिससे कभी छुटकारा नहीं हो सकता।

३०—इससे कुछ कम दरजेके बहुतसे दृष्टांत (मिसाले) सहसा विचारमें आ सक्ते हैं कि जहां लालसा पूरी नहीं हो सक्ती है वहां उससे अत्यन्त कष्ट होता है। एक साधारण दृष्टांत उस मनुष्यका है जिसमें कोई मुख्य अवगुण शराबी या विषयी होनेका सा तो नहीं है परन्तु वह सर्वथा इस दुनियांकी वस्तुओंमें लगा रहा है और उसका जीवन धंधोंमें या सामाजिक व्यर्थ व्यवहारोंमें बीता है। ऐसे मनुंष्यका वासनालोकमें मन नहीं लगता है; जिन वस्तुओंकी उसे लालसा है वे यहां उसके लिये असंभव हैं, क्योंकि वासनालोकमें करनेके लिये कोई भी धन्धा नहीं है और यद्यपि साथी तो जितने वो चाहे मिल सकते हैं परंतु समाजकी परिपाटी अब उसको अनमेल (नामोजू) लगती है क्योंकि जिन २ बहानोंसे समाजके व्यवहार दुनियांमें प्रायः चलते हैं वे अब असंभव हो गये हैं।

३१—ऐसी दशा थोड़े ही मनुष्योंकी होती है, बहुत करके तो मरनेके पीछेकी दशा जीते जीकी अपेक्षा (बनिसबत) अधिक सुखकी हो जाती है। मरनेके पीछे पहले ही पहल मनुष्यको इस बातका भान होता है कि मुझे अत्यन्त अद्भुत और आनंद देनेवाली स्वाधीनता (अज़ादी) है। उसे किसी बातकी भी चिंता नहीं रहती है और उन कामोंको छोड़कर कि जो उसने अपने आप अपने ऊपर लिये हों और किसी कामका बोझ उसपर नहीं होता है। बहुत ही थोड़े मनुष्योंको छोड़-कर सबहीको पृथ्वीपर जन्मभर ऐसे कामोंके करनेमें समय बिताना पड़ता है कि जिनको वस चलते वे नहीं करते परंतु ये उसको अपने, अपनी स्त्री और कुटुम्बको पालन करनेके लिये करने पड़ते हैं। वासना लोकमें कोई सहायता नहीं चाहनी पड़ती है; न तो भोजन चाहना पड़ता है, और न कपड़े क्योंकि गर्मी और सर्दी कुछ भी नहीं लगती, और हरएक मनुष्य केवल अपनी कलपना (खयाल) से जैसे चाहे वैसे कपड़े सजा लेता है। मनुष्यका बचपनसे लेके यही पहला अवसर है कि उसे पूरी स्वाधीनता मिली है कि वह अपना सारा समय ठीक उसी काममें लगावे जिसमें उसका मन लगे।

३२—उसके हरएक प्रकारके भोग भोगनेकी शक्ति (गुंजा-यश) बहुत बढ़ जाती है, अगर वह भोग ऐसा हो कि उसके भोगनेके लिये स्थूल शरीर न चाहना पड़ता हो। अगर वह संसारके सुहावने दृश्यका रसिक (शौकिन) है तो वह

तुरन्त ही विना थके संसार भरमें फिर कर उसके सुन्दरसे सुन्दर स्थान देख सक्ता है, और उसकी गूढ़से गूढ़ गुफाओंको ढूंढ सकता है अगर वह चित्रादि कलाओंका रसिक है तो सारे जगत्के वढिया चित्र उसके सन्मुख हैं। अगर वह गाने वजानेका प्रेमी है तो उसके सुननेको वह जहां चाहे वहां जा सक्ता है और अव गाने वजानेके गौरवको वह पहलेकी अपेक्षा वहुत अधिक जानने लगेगा; क्योंकि स्थूल शब्द तो उसे अव नहीं सुनाई पड़ेंगे परन्तु गाने वजानेके पूरे गुणोंका अनुभव अव उसको स्थूल लोकसे कहीं वढ़कर होगा। अगर वह पदार्थविद्या (Science) का अभ्यासी है तो वह संसारके वड़े वड़े विज्ञानियोंके पास जाकर उनसे ऐसे ऐसे विचार और सिद्धान्त ले सकेगा जो उसके लिये सुगम हों; यह ही नहीं वरन इस ऊंचे लोककी पदार्थविद्यामें वह अपने आप भी नई नई वातें निकाल सकेगा क्योंकि अव उसको इस काममें इतना दिखलाई पड़ता है कि पहले कभी संभव नहीं था। सवसे अच्छा वह है जिसको इस संसारमें सवसे वड़ा आनन्द मनुष्यमात्रकी सेवा करनेमें होता था उसको परोपकार करनेके लिये वहुत अवकाश मिलेगा।

३३—इस वासनालोकमें लोगोंको न भूख लगती है न सर्दी और न रोगोंसे पीड़ा होती है; परन्तु ऐसे वहुतसे हैं जो अज्ञानी हैं किन्तु ज्ञानके अभिलाषी हैं, अर्थात् जो अव भी संसारकी वस्तुओंके मोहसे फंसे तो हैं परन्तु उनको ऐसे

ज्ञानकी चाहना है कि जिससे उनके विचार सुधर जावें या यों कहो बहुत ऐसे हैं कि जिन्होंने अपने कपोलकल्पित विचारोंके जंजालमें अपने आपको फंसा रक्खा है, और उससे उनको छुटकारा वह ही दिला सक्ता है जो कि इन नये देश कालोंको जानता हो और इनको यह समझा सके कि इस संसारकी बातें यथार्थमें तो क्या है और अपने मनमें उनको भ्रमसे ये क्या समझ रहे हैं। यदि कोई मनुष्य कोमल हृदयका और चतुर हो तो वह इन सबकी सहायता कर सक्ता है। बहुतसे लोग वासनालोकमें जब आते हैं तो यहांकी कोई भी बात नहीं जानते और न उनको पहले पहल यह जान पड़ता है कि वे मरे हुए हैं और जब उन्हें मर जानेकी निश्चय हो जाती है तो उन्हें यह डर लगता है कि अब न जाने हमपर क्या क्या बीतेगी क्योंकि उन्होंने पाखण्डियों* की झूठी और बुरी बातें सुन रक्खी हैं। इन सबको धीरज और शांतिकी जरूरत है, और ये उनको वह ही साधारण बुद्धिवाला मनुष्य दे सक्ता है जिसको सृष्टिकी यथार्थ बातोंका कुछ बोध हो।

३४—इसीलिये यदि जीते जी किसी मनुष्यके व्यवहार ठीक २ (माकूल) रहे हों तो उसको न तो उपकारी कामोंकी

---

* ईसाई मतके बहुतसे फिरकोंमें ऐसा माना गया है कि मुख्य मुख्य अपराधोंकी सजामें मरनेपर मनुष्यको दण्ड ऐसे नर्कका दिया जाता है कि उनका उससे छुटकारा कभी हो ही नहीं सक्ता है।

कमी है और न साथियोंकी। वे मनुष्य जिनके कि भाव (शौक) और व्यवहार एकसे हैं स्वतः ही वहां भी इकट्ठे हो जाते हैं जैसे कि यहां; और बहुतसे लोक जो जीते जी हमारे स्थूल शरीरके गाढ़े परदेसे ढके हुए रहते हैं अब उघड़ जाते हैं, और जो कोई चाहें वे इनकी ब्योरेवार छान बीन कर सक्ते हैं।

३५—बहुत करके तो लोग अपने आस पासका देशकाल अपने आप बना लेते हैं। हम इस वासनालोकके सात उप-विभागोंकी थोड़ी सी बात पहले कह चुके हैं। अगर हम सबसे ऊंचे और सूक्ष्म उपविभागसे नीचेकी ओरको गिनती करें तो यह पाया जाता है कि इन सबके तीन दरजे हैं–पहले * में तो पहला, दूसरा और तीसरा उपविभाग है दूसरे दरजे † में चौथा पांचवां और छठा और तीसरे दरजे ‡ में अकेला सबसे नीचेवाला सातवाँ है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं ये सब एक दूसरेमें पैठे हुए हैं परंतु उनके कणोंका यह साधारण सुभाव है कि अपने २ हल्के भारी पनके उतार चढ़ावके अनु-सार उनकी रचना क्रमसे एक दूसरेके ऊपर हो जाती है; जिससे यह होता है कि ऊंचेके उपविभागोंके कणोंके अधिक-तर पुंज नीचेके उपविभागोंके कणोंके पुंजसे धरतीके ऊपर अधिक तर ऊंचाई या दूरीपर है।

३६—इसलिये यद्यपि वासनिकलोकमें रहनेवाला कोई मनुष्य उसके किसी भागमें जा सक्ता है तो भी सहज सुभावसे

* पितृलोक। † प्रेत लोक। ‡ नर्क।

वह उस लोकमें उसी दरज़ेपर तिरता रहता है जहांके कण भारीपनमें उन कणोंके बराबर हैं जो कि उस मनुष्यके वासनाशरीरमें सबसे भारी हैं। जिस मनुष्यने मरनेके पीछे अपने वासनाशरीरके कणोंकी रचनाके क्रममें फेर फार नहीं हो जाने दिया है अर्थात् जिसने यातनाशरीर नहीं बनने दिया है वह सारे वासनालोकमें सब जगह फिर सक्ता है; परंतु बहुतसे लोग जो ऐसा हेर फेर हो जाने देते हैं (यातना शरीर बन जाने दिया है) वे इस प्रकार स्वाधीन नहीं हैं और इसका यह कारण नहीं है कि इनके ऊंचेसे ऊंचे दरजे तक चढ़नेमें या नीचेसे नीचे दरजे तक उतरनेमें कोई वस्तु रोकनेवाली है परंतु इसका केवल यही कारण है कि वे इस लोकके केवल किसी एक भागका ही अनुभव अच्छी भांति कर सकते हैं।

३७—मैं इसका कुछ वर्णन कर चुका हूं कि उस मनुष्यकी क्या दशा होती है जो कि सबसे नीचे दरजेपर गाढ़े २ वासनिक लोकके कणोंकी पोढी सीप या कवचके भीतर बंद है। ये सीपके कण वासनिकलोकके और सब कणोंसे अत्यन्त गाढ़े हैं, इसलिये वह अपने उपविभागके बाहरकी बातोंको दूसरे दरजोंके मनुष्योंसे बहुत कम जानता है। इसका वासनिकशरीर सब मिलकर भारी होता है और इसलिये वह वासनालोकके उस भागमें तिरता है कि जो धरतीके भीतर है। पृथ्वीके कण उसकी वासनिक इन्द्रियोंके सर्वथा जाननेमें नहीं आते हैं और उसका स्वाभाविक लगाव उन

मोटेसे मोटे वासनिक कणोंसे है जोकि ठोस पृथ्वीके वासनिक प्रतिरूप हैं। जिस मनुष्यने कि अपनेको वासनिक लोकके इस नीचेसे नीचे उपविभागमें बांध रखा है उसको प्रायः यह जान पड़ेगा कि वह अंधेरेमें तिर रहा है और उन दूसरे प्रेतोंसे वहुत करके छिका हुआ है कि जिनके जीवन चरित्र ऐसे रहे हैं कि जिससे वे वासनालोककी ऊंची कक्षामें रह सकें।

३८—वासनालोकके चौथे पाचवें और छठे भाग वे हैं जिनमें सबसे अधिक लोग जाते हैं और इन भागोंसे लगे हुए इस पृथ्वीके और इस पृथ्वीके ऊपरकी जानी वूझी सब वस्तुओंके प्रतिरूप होते हैं। वासनिक लोकके छठे भागमें जीवनदशा हमारी इस पृथ्वीपर जो साधारण मनुष्योंकी दशा है वैसी ही है केवल भेद यह है कि वहां स्थूल शरीर नहीं होता है और न उन वस्तुओंकी जरूरत होती है कि जो स्थूल शरीरके लिये चाहनी पड़ती हैं और जैसे जैसे कि मनुष्य पांचवें और चौथे भागमें चढ़ता जाता है उसका शरीर सूक्ष्म (हलका) होता जाता है, और उसका मन नीचेका पृथ्वी और उसके व्यवहारोंसे हटता जाता है।

३९—पहले दूसरे और तीसरे भाग (पितृलोक) होते तो उसी ठौरमें हैं जहां कि चौथे पांचवें होते हैं परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इनकी अपेक्षा ये पृथ्वीके ऊपर अधिकतर ऊंचे और उतने ही अधिक सूक्ष्म हैं। जो मनुष्य इन भागोंमें

रहते हैं उन्हें पृथ्वी और उसकी वस्तुएं नहीं दिखायी पड़तीं, वे प्रायः अपने आपमें ही निमग्न (गर्क) रहते हैं, और बहुत कर अपनी संपत्ति अपने आप बना लेते हैं और जो वस्तुएं यों बनाई जाती हैं वे इतनी प्रत्यक्ष होती हैं कि उसी भागके सब निवासियोंको और दिव्यदृष्टि वालोंको भी दिखलाई पड़ सकता है ।

४०–यह वह लोक है कि जिसको भूत विद्यावाले स्वर्ग कहते हैं अर्थात् वह लोक कि जिसमें मरे हुए लोग अपनी विचारशक्ति (खयाल) से ही अपने घर, पाठशाला, नगर आदि कुछ कालके लिये बना लेते हैं, यह संपत्ति यद्यपि हमें कपोल कल्पित (फ़र्ज़ी) लगती है तो भी उन मरे हुए लोगों-को तो यह ऐसी सचमुच जान पड़ती है जैसे कि घर, मंदिर, गिरजे, पत्थरके बने हुए हमको दिखाई देती हैं, और बहुतसे लोग तो वहां वर्षों तक अपनी इन मन कल्पित रचनाओंके बीचमें बहुत प्रसन्नतासे बने रहते हैं ।

४१–इनमेंसे कोई रचना तो अति सुन्दर होती है। उसमें सुहावने सरोवर, विशाल पर्वत, रमणीक फुलवाड़ियां तो ऐसी हैं कि भूलोकमें कोई भी उनसे नहीं लगतीं, परन्तु इनमें ऐसी भी बहुत सी बातें हैं कि जिनको देखकर चतुर और अभ्यासी दिव्यदृष्टि वालेको हंसी आती है। जैसे कि अपने अपने धर्मकी पुस्तकोंमें जो जो अद्भुत चिन्ह अलंकारके रूपमें दिये हुए हैं उनकी शकलें अनपढ़े लोग अपने मनकी कल्पनासे

रचनेका जतन (कोशिश) करते हैं। एक मूर्ख किसान ऐसे पशुकी शकल बनाता है कि जिसके भीतर आंखें ही आंखें भरी हों, या काचके ऐसे समुद्र जिसमें आग भरी हुई हो। ये शकलें प्रायः थोड़े ही कुरूप लगती हैं परन्तु उनके बनानेवालेको वे सर्वथा ठीक लगती हैं। ये वासनिकलोक ऐसे मनकल्पित शकलों और दृश्योंसे भरा हुआ है। सब मतोंके लोग अपने २ देवताओंकी और अपने मतके अनुसार अपने अपने स्वर्गकी शकलें रच लेते हैं और इन स्वप्नकी सी रचनाओंमें बहुत प्रसन्न रहते हैं। यह व्यवस्था तब ही तक रहती है जबतक कि ये लोग मनलोक (स्वर्ग) में न चले जावें, और वहाँ जानेसे असली तत्त्वके समीपतर (नजदीक) न आ जावें।

४२—साधारण मनुष्य उसे समझना चाहिये कि जिसके मरनेके पीछे वासनाशरीरके कणोंकी रचनाके क्रममें हेरफेर हो अर्थात् जिसके यातना शरीर बन जावे। मरनेके पीछे ऐसे हर साधारण मनुष्यको क्रमसे इन सब भागोंमें होकर जाना पड़ता है। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि हरएक मनुष्यको इन सब भागोंमें बोध बना रहता है। साधारण सभ्य मनुष्यके वासनाशरीरमें वासनालोकके सबसे नीचेके भागका अंश बहुत ही थोड़ा होता है और इतना नहीं होता कि उससे भारी खोपकी रचना हो सके। कणोंमें फेरफार होनेसे शरीर-पर सबसे बाहरकी ओर भारीसे भारी वासनिक कण आ जाते हैं, साधारण मनुष्यमें भारीसे भारी कण छठे विभागके होते

हैं और इनमें सातवेंका भी कुछ अंश मिला हुआ होता है, इसलिये उस मनुष्यको इस पृथ्वीका (वासनिक) प्रतिरूप दिखलाई पड़ता है।

४३—जीवात्मा बाहरसे हट हट कर अपने आपमें भीतर आती है, और जैसे वह हटती जाती है वैसे ही वह वासना-लोककी पंक्तियोंको एक एक करके छोड़ती जाती है। इसलिये जितने अधिक कण किसी विभागके उसके वासना-शरीरमें होते हैं उतना ही अधिक उसको उस विभागमें ठहरना पड़ता है, और उसके वासनाशरीरमें वासनालोकके किस किस भागके अंश कितने कितने हैं, यह बात इससे निकलती है कि उसके आचरण कैसे रहे हैं; और वह कैसी वासनाओंमें लीन रहा है और इनके कारण उसके वासना शरीरमें किस २ भांतके वासनालोकके अंश (कण) खिंच २ कर भिदे हैं। यों साधारण मनुष्यको छठे उपविभागमें यह जान पड़ता है कि वह उन मनुष्यों और स्थानोंपर मंडला रहा है जिनसे कि उसका जीते जी पृथ्वीपर अति गाढ़ा संबंध था, और जैसे २ समय बीतता जाता है वैसे वैसे ये पृथ्वीके पदार्थ धीरे धीरे धुमले और उसके लिये तुच्छ (कम वकअत) होते जाते हैं और यों वह अपने परिकरको बदल बदलकर अपने स्थायी विचारोंसे मिलता हुआ करता जाता है। जब वह तीसरे * उपविभागमें पहुंचता है तब

* पितृलोकके तीन उपविभागोंमेंसे सबसे नीचेके उपविभागमें।

उसे यह जान पड़ता है कि पृथ्वीके पदार्थों के वासनिक रूप तो लोप हो गये हैं और उसकी ठोर यह स्थायी मनका भाव सर्वथा जम गया है।

४४—तीसरे उपविभागसे दूसरा किंचित् सूक्ष्मतर है, क्योंकि यदि तीसरा उपविभाग भूत विद्यावालोंका स्वर्ग है तो दूसरा उपविभाग प्रायः अज्ञानी विश्वासशील आस्तिकों (शरहके पाबंद) का है। पहला या सबसे ऊंचे दरजेका उपविभाग उन लोगोंके रहनेका मुख्य स्थान है जो जीते जी नास्तिक थे परन्तु बुद्धिमानीके कामोंमें रत रहे हैं और इन कामोंको परोपकारके अभिप्रायसे नहीं किया है किन्तु अपने स्वार्थके लिये या केवल अपने मनोरंजनके लिये किया है। ये सब लोग सर्वथा प्रसन्न हैं। कुछ आगे चलकर उनकी ऐसी अवस्था हो जायगी कि वे किसी बहुत ऊंचे लक्ष्यकी कदर कर सकेंगे; और जब यह अवस्था प्राप्त हो जायगी तब यह ऊंचा लक्ष्य भी उनको तैयार मिलेगा।

४५—वासनालोकमें भी, जैसा यहां होता है जो लोग एक ही देशके या एक ही धंधेवाले हैं वे साथ साथ रहा करते हैं। यथा किसी मतके लोग जो कि किसी विशेष रूपके स्वर्गके माननेवाले हैं वे उन लोगोंके बीचमें नहीं पड़ते हैं जो दूसरे मतोंके हैं और जिनकी स्वर्गके सुखोंकी कल्पना और भांतिकी है। ऐसी कोई रोक नहीं है कि ईसाई मंडलाता २ हिन्दुओं या मुसलमानोंके स्वर्गमें न जा सके परंतु वह प्रायः

जायगा नहीं क्योंकि उसके और उसके ईसाई मित्रोंके अनुरागकी और मन लगनेकी बातें सब उन्हींके मतके स्वर्गमें होती हैं। यह किसी प्रकार समुच वह स्वर्ग नहीं है कि जिसका किसी मतमें वर्णन किया हो परन्तु सच्चे स्वर्गकी यह केवल एक मोटी और भद्दी नकल है। असल स्वर्गकी बात तो मनलोकके वर्णनमें आवेगी।

४६—जिस मरे हुए मनुष्यने अपने वासनाशरीरके कणोंमें हेर फेर नहीं होने दिया हो वह वासनालोक भरमें जहां चाहे तहां जा सकता है और जिस किसी वस्तुकी वह परीक्षा करता है उसका और लोगोंकी नाईं केवल एक अंश ही नहीं देखता है, किन्तु उसे समूचा देख लेता है। उसे इस लोकमें इतनी भीड़ नहीं लगती कि जिससे अड़चण पड़े, क्योंकि पृथ्वीसे वासनालोकका विस्तार तो बहुत बड़ा है और वहां आबादी कम होती है, जिसका कारण यह है कि पड़ता फैलानेसे साधारण मनुष्य जितने वर्ष पृथ्वीपर जीता है उससे वासनालोकमें उसे कम लगते हैं।

४७—परन्तु इस वासनालोकमें केवल मरे मनुष्य ही नहीं, रहते हैं किन्तु जीते हुए मनुष्योंमेंसे भी लगभग एक तिहाईके इसमें रहते हैं अर्थात् वे जो सोते होते हैं और नींदमें अपने स्थूल शरीरको थोड़े समयके लिये छोड़ जाते हैं। वासनालोकमें मनुष्योंके सिवाय और भी बहुतसे जीव रहते हैं इनमें से मनुष्यके दरजेसे कोई बहुत नीचे होते हैं और कोई बहुत

ऊंचे। यह अप्सरादि देवोंकी एक बहुत बड़ी सृष्टि है जिनमेंसे कुछ वासनालोकमें रहते हैं और वहांकी आवादीका एक बड़ा भाग इनका है। यह बड़ी सृष्टि, भूलोकमें भी है क्योंकि उसमेंसे बहुतसे देवोंके प्राणमय कोष (शरीर) भी होता है और वे साधारण स्थूल दृष्टिसे देखनेमें आ जावें उससे कुछ ही अधिक सूक्ष्म हैं। सच तो यह है कि बहुधा ऐसा हो जाता है कि वे दिखलाई भी पड़ सकते हैं और बहुतसे एकान्त पहाड़ी प्रान्तोंमें किसानोंमें इनके दिखलाई पड़नेकी परम्परासे कथाएं चली आती हैं, इन किसान लोगोंमें इनके ये नाम हैं परियां, भले लोग, अप्सरा, भूरेदेव।

४८—वे चाहे जौनसी शकल धारण कर सकते हैं परन्तु वे प्रायः छोटे छोटेसे मनुष्यकी शकल बनाये रहते हैं। अभी उनमें अलग अलग (व्यक्तिगत) जीवात्मा नहीं आई और इसलिये यह कहा जा सकता है कि वे प्रायः प्राणमय और वासनाशरीरधारी पशु हैं; परन्तु उनमेंसे बहुतसे तो साधारण मनुष्यसे बुद्धिमें हर तरहसे बराबर हैं। ये भी हमारी नाईं जाति जातिके और भांत भांतके होते हैं, और बहुधा इनके चार बड़े दरजे किये जाते हैं और ये पृथ्वीकी, पानीकी, अग्निकी और वायुकी परियां कहलाती हैं। इन चारोंमेंसे केवल वायुकी परियां वासनालोकमें रहती हैं परन्तु वे इतनी बहुत हैं कि वासनालोकमें वे हर कहीं मिलती हैं।

४९—यहां एक और जातिके भी जीव हैं अर्थात् फरिश्ते

जिनको कि हिन्दुस्थानमें देव कहते हैं। ये वे जीव हैं कि जो मनुष्यसे क्रमोन्नतिमें बहुत ऊंचे हैं और इनमेंसे केवल नीचे से नीचे दरजेवाले ही वासनालोकसे मिले होते हैं। इस नीचेके दरजेवाले देव शायद उस मनुष्यकी उन्नतिके लगभग हैं कि जिसको हम विशेष करके भला मनुष्य समझते हैं।

५०—हमारे सौर्य्य जगत्में हमही अकेले निवासी नहीं हैं और न हम मुख्य निवासियोंकी गिनतीमें हैं। हमारी क्रमोन्नतिके साथ ही साथ और दूसरी क्रमोन्नतियोंकी शैलियां भी चल रही हैं, इनको कभी मनुष्य नहीं बनना पड़ता क्योंकि उनके क्रममें भी एक दरजा है कि जो हमारे मनुष्योंके दरजेके बराबरीका है। क्रमोन्नतिकी इन दूसरी शैलियोंमें एक यक्ष अप्सरादिकी है जिसका कि ऊपर वर्णन हुआ है और इस शैलीमें ऊपरके एक दरजेपर ये फरिश्तों या देवताओंको सृष्टि आती है। हमारी उन्नतिके हालके दरजेपर ये देव चौड़ेमें हमसे बहुत ही कम मिलते हैं, परन्तु हम जैसे जैसे उन्नति करते जावेंगे वैसे ही ये हमको अधिकसे अधिक मिलते जावेंगे।

५१—जब मनुष्यकी नीच वासनाएं जाती रहती हैं (अर्थात् वे वासनाएं जिनमें कि स्वार्थका विचार होता है) तब मनुष्यका वासनालोकका जीवनका छोर आ जाता है और जीवात्मा आगे मनलोकमें चली जाती है। इसमें किसी प्रकार स्थान नहीं बदला जाता, इसमें तो केवल यह अर्थ है कि धीरे धीरे

भीतर हटते हटते जीवात्मा अब सूक्ष्मसे सूक्ष्म वासनाके कणों-से भी पार निकल गई है; और इस कारणसे मनुष्यका चेतन अब मनलोकमें आ जमा है। उसका वासनाशरीर अभी सबका सब खिर नहीं पाया है किन्तु खिर रहा है और मनुष्य उसको वासनिकलोथकी नाईं उतार फेंकता है ठीक जैसे कि उसने इससे पहले भीतर हटने (अन्तरमुख होने) के दरजेपर स्थूलशरीरकी लोथ (लाश) को छोड़ा था। इन दोनोंमें एक प्रकारका भेद है, जिसकी ओर ध्यान देना चाहिये क्योंकि इस भेदसे कुछ प्रयोजन है।

५२—जब कि मनुष्य अपने स्थूल शरीरको छोड़ता है तब उससे उसका छुटकारा पूरा २ हो जाना चाहिये और प्रायः यह पूरा ही हो जाता है, परन्तु वासनाशरीरके कण जो कि अधिक सूक्ष्मतर हैं उनके छोड़नेमें यह बात नहीं होती है। जीते जी साधारण मनुष्य अपने वासनिक कणोंमें अपनेको इतना उलझा लेता है अर्थात् वह अपनी नीच वासनाओंसे अपनेको इतना मिला देता है कि आत्माकी जो भीतर हटनेकी शक्ति है वह इसे फिर पूरी २ वासनाशरीरसे अलग नहीं कर सकती। इसलिये जब वह अपने वासनाशरीरसे अंतमें अपने आपको छुड़ा लेता है, और मनशरीरमें अपना काम करने लगता है तब उसका कुछ अंश जाता रहता है; अर्थात् उसका कुछ अंश वासनाशरीरमें उलझा हुआ पीछे रह जाता है।

५३—इससे वासनाशरीरकी लोथमें कुछ प्राण बाकी रह-जाते हैं, और इसलिये यह लोथ वासनिक लोकमें फिर भी चलती फिरती रहती है, और अज्ञानी लोग भूलसे सहजमें इस वासनिकलोथको मनुष्य ही समझ लेते हैं, और यह भूल विशेष करके यों हो जाती है कि जो चेतनाका अंश इस लोथमें फिर भी बाकी रह जाता है वह इस मनुष्यका ही अंश है, और इसलिये अपने आपको मनुष्य ही समझता है, और बात चीतमें भी अपने आपको मनुष्य ही बतलाता है। उस वासनिक लोथको अपनी (उस मनुष्यकी) पहिलेकी बातोंकी याद तो बनी रहती है, परंतु यह स्वांग न तो पूरा है और न इससे मन भरता है। कभी २ उन मंडलियोंमें जहां भूत प्रेत बुलाये जाते हैं इस प्रकारका जीव आ जाता है और तब देखनेवालोंको यह अचरज होता है कि यह हमारा अमुक मित्र मरनेके पीछे इतना किस रीतिसे बिगड़ गया है, इस अधूरे जीवको हम वेताल कहते हैं।

५४—कुछ समय पीछे यह चेतनका अंश भी वासना शरीरमेंसे निकल जाता है, परंतु फिर उस आत्मामें यह लौटकर नहीं जाता कि जिसमेंसे यह आदिमें निकला था। तब भी यह वासनिकलोथ बनी रहती है, परंतु जब इसमें पहिलेके जीवका लेशमात्र भी अंश नहीं रहता है, तब हम इसे खोखला कहते हैं, यह खोखला अपने आप भूत बुलाने वालोंकी मंडलीमें कुछ नहीं बतला सकता और न अपने आप

कोई प्रकारका काम चलाकर कर सकता है; परंतु ऐसे खोखलोंमें कोई खिलाड़ी परियां घुस जाती हैं और उसमें कुछ समयके लिये रहने लग जाती हैं। ऐसा खोखला जिसमें परी आगई हो भूतमंडलीमें बातें कर सकता है और उस खोखलेके असली मालिकका स्वांग बन सकता है, क्योंकि उसके कुछ लक्षण और कुछ २ याद उसके वासनिकलोथसे यह परी उभार सकती है।

५५—जब कि मनुष्य सो जाता है तब वह अपने वासना-शरीरमें हट आता है, और अपने सारे भौतिक शरीर, स्थूल व प्राणमयकोष दोनोंको छोड़ जाता है। जब वह मर जाता है तब वह अपने साथ अपने भौतिक शरीरका प्राणमय भाग निकालकर अपने संग ले जाता है और इसलिये उस प्राणमय-कोष) से फिर अपनेको छुड़ानेमें उसे प्रायः कमसे कम एक क्षणकी वेहोशी (मूर्छा) हो जाती है। प्राणमय कोष वाहन नहीं है, और इसलिये वाहन या शरीरकी नांई इससे काम नहीं लिया जा सकता है; इसलिये जब यह मनुष्यके चारों ओर घिराहुआ होता है, तब वह मनुष्य उस समय न तो भूलोकमें काम कर सकता है, और न वासनालोकमें। कोई २ मनुष्य इस प्राणमय कोषको कुछ क्षणोंमें ही छिटका देते हैं, और कोई इसमें घंटों रहते हैं, कोई कई दिन तक रहते हैं और कोई हफ़्तों तक।

५६—यह भी निश्चय नहीं है कि इसको छिटकाते ही

मनुष्यको वासनालोकका एक साथ ही बोध हो जायगा । क्योंकि उसमें वासनिकलोकके नीचेसे नीचे दरजेके कण बहुत होते हैं जिससे कि उसके चारों ओर सीपसी प्रायः वन जाती है । परन्तु शायद वह इन कणोंको कुछ भी काममें नहीं ला सकेगा । अगर जीते जी उसका जीवनचरित्र ठीक ठीक सभ्यताका रहा है तो इन नीचेसे नीचे वासनिक कणोंके काममें लाने या उनके कंपनोंसे एकरस होनेकी टेव (आदत) उसमें थोड़ी ही होगी, और यह टेव क्षण भरमें उसे प्राप्त नहीं हो सकती । इसलिये तवतक ये कण धीरे २ खिर न जावें, और इसकी ठौरमें ऐसे कण शरीरके ऊपर न आजावें कि जिनको काममें लानेका इसे अभ्यास हो, तवतक वह वेहोश वना रहेगा । परन्तु यों सीपमें वंद होकर कोई विरला ही निरा वेहोश हो जाता होगा, क्योंकि सीप (यातना शरीर) चाहे कितने ही जतनसे क्यों न वनाई गई हो उससे सूक्ष्मतर अर्थात् बढ़िया कण उसमें होकर कुछ न कुछ वाहर निकल ही आते हैं, और इससे मनुष्यको बाहरको वस्तुओंकी क्षणिक झिलकें पड़ ही जाती हैं ।

५७—कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं कि जो अपने भौतिकशरीरोंसे ऐसे वेबस होकर लगे होते हैं कि वे प्राणमय कोषको ढीला नहीं छोड़ते हैं, किन्तु भरशक्ति उसके पकड़े रखनेका यत्न करते रहते हैं । वे ऐसा बहुत समय तक कर सकते हैं, परंतु इसमें उन्हें कष्ट बहुत होता है । वे बंद होकर दोनों

लोकोंसे बाहर रहजाते हैं, और उन्हें यह जान पड़ता है कि उनके चारों ओर गहरा धुंधला कुहर सा घिरा हुआ है; और इसमें होकर उन्हें भूलोककी वस्तुएं बहुत ही धुंधली २ दिखाई पड़ती हैं, जिनमें कि रंग सर्वथा नहीं होते। इस क्लेशकी दशामें उनको अपनी स्थिति बनाये रखनेमें अत्यंत ही श्रम उठाना पड़ता है, तो भी वे अपने वासनाशरीरको नहीं छोड़ते हैं, क्योंकि उनको यह जान पड़ता है कि जिस एक लोकका उनको परिचय है, कमसे कम उस एक लोकके जाननेके लिये तो यह प्राणमय कोष एक साधन है। इस भांत वे सुनसान और उदास भटकते फिरते हैं, यहांतक वे इतने थकजाते हैं कि प्राणमय कोष भी उनसे छुटजाता है और वे वासनालोकमें फिसल जाते हैं जिसमें उनको कुछ सुखका सा अनुभव होने लगता है। कभी २ वे ऐसे उकता जाते हैं कि अंधे होकर दूसरोंके शरीरको पकड़कर उनमें घुस जानेका यत्न करते हैं, और किसी किसी अवसरपर यह यत्न सफल भी हो जाता है। वे बालकके शरीरमें भी कभी प्रवेश कर लेते हैं और उसके जीवको उसमेंसे निकाल देते हैं; या कभी कभी वे किसी पशुके शरीरमें भी घुसजाते हैं। ये सब क्लेश केवल अज्ञानसे होता है, और जो कोई मौत और जीवनके नियमोंको समझ लेता है उसे यह विपदा कभी नहीं हो सकती है।

५८—जब वासमा जीवनका अन्त आ जाता है तब यह

मनुष्य वासनालोकसे भी मर जाता है और मनलोक स्वर्गमें जाग उठता है। दिव्यदृष्टिका अभ्यासी तो मनलोक भरमें जहां चाहे वहां जाता है, और जो देशकाल कि उसको वहां मिलते हैं उनमें ठीक भूलोक और वासनालोककी नाईं रहता है। परन्तु जो ऐसा दिव्यदृष्टिका अभ्यासी नहीं है उसकी दशा ऐसी नहीं होती है। साधारण मनुष्य जीते जी सदा संकल्पके आकारोंके समूहमें घिरा हुआ रहा है, कोई कोई अनित्य विचाराकारोंको वह कम ध्यान देता है और ये उससे जल्दी अलग हो जाते हैं; परन्तु वे विचाराकार जो उसके जीवनके मुख्य अनुरागों (शौक) के हैं, सदा उसके साथ रहते हैं और बराबर बढ़ते और पोढ़े (मजबूत) होते जाते हैं। अगर इनमेंसे कोई स्वार्थके हों तो इनकी शक्ति वासनिक कणोंमें आ-जाती है और उसके वासनालोकके जीवन कालमें ये विचारा-कार लय हो जाते हैं। परन्तु वे विचाराकार जो निरे निस्स्वार्थ (परोपकार) के हैं उनका सम्बन्ध केवल उसके मनशरीरसे होता है और इसलिये जब वह मनुष्य मनशरीरमें होता है तब इन्हीं विशेष विचारोंमें होके उसे मनलोकका भान होता है।

५६—उसके मनशरीरका विकाश अभी पूरा नहीं हो पाया है, इसलिये इससे वे ही भाग अभी पूरा पूरा काम देते हैं, जिनको कि वह परोपकारमें काममें लाया है। जब वह फिर दूसरी मौतके* पीछे जागता है तो उसे पहले ही पहले जो

* वासनालोककी मौत।

बोध होता है वह ऐसे आनन्द और प्राणशक्तिका होता है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता अर्थात् जीनेमें उसे इतना पूरा सुख लगता है कि उसे उस समय जीनेके सिवाय और कोई चाहना नहीं होती है। इस सृष्टिके ऊंचे लोकोंमें जीनेका सार यही आनन्द है। वासनिक जीवन अवस्थामें भी इतना आनंद हो सकता है कि जो स्थूल शरीरमें आनन्द अनुभव हो सकता है उससे कहीं अधिक है; परन्तु मनलोकका स्वर्ग जीवन वासनालोककी अपेक्षा अत्यन्त आनन्दमय है। इससे ऊंचे लोकोंमें भी क्रमसे यह ही बात पाई जाती है इन लोकोंमेंसे किसीमें रहते हुए यह जान पड़ता है कि उसमें ही आनन्दकी अत्यन्त परिपूर्ति है; तो भी जब कि उससे ऊपरके लोकमें मनुष्य पहुंच जाता है तब उसे यह सूझने लगता है कि इसका सुख और भी अधिक बढ़कर है।

६७—जैसे जैसे आनन्द बढ़ता जाता है वैसे वैसे बुद्धि और दृष्टि बढ़ती जाती है। स्थूललोकमें मनुष्य हलबल करता फिरता है और ऐसा समझता है कि मैं बड़ा कामवाला और बुद्धिमान हूँ; परन्तु वासनालोकमें पैर रखते ही उसे जान पड़ता है कि अभीतक मानो वह बराबर एक तुच्छ कीड़े-की नाईं रेंग रहा था और केवल अपने पत्तेहीको देख रहा था और अब उसने तितलीकी नाईं अपने पर फैला दिये हैं और उड़कर एक बड़े लोकको सुहावनी धूपमें वह आ गया है। यह असंभवसा दिखलाई पड़ता होगा, परन्तु जब वह

वासनालोकसे मनलोकमें जाता है तब भी ऐसा ही अनुभव होता है, क्योंकि मनलोककी अवस्था भी वासनिक अवस्था-की अपेक्षा इतनी अधिक भरी हुई और फैली हुई और तीक्ष्ण है कि यहां भी कोई मिलान ही नहीं हो सकता; परन्तु इन सबसे भी परे एक और भी अवस्था है अर्थात् जनलोक, जिसके सामने यह भी ऐसा फीका है जैसे किसी धूपके आगे चांदनी।

६१—मनुष्यको मनलोककी दशामें और वासनालोककी दशामें बड़ा भेद है। वासनालोकमें तो वह ऐसे शरीरसे काम लेता था कि जिससे काम लेना वह भलीभांति जानता था अर्थात् जो ऐसा शरीर है कि जिससे वह हर रात नींदमें काम लिया करता था; परन्तु मनलोकमें वह देखता है कि मैं ऐसे शरीरमें हूं कि जिससे पहले मैंने कभी काम नहीं लिया है, और जिसके पूरे विकास होनेमें भी अभी बहुत देर है। यह शरीर ऐसा होता है कि उस लोककी बातोंको दिखानेके बदले उलटा उसको उस लोकसे बहुत कुछ बंद कर देता है। उसके स्वभावका नीचेका भाग तो उसकी पापमोचन अवस्था-में (प्रेतलोक पितृलोकमें) जलकर क्षय हो चुका है, और अब केवल उससे वे ही ऊंचे और सूक्ष्मतर विचार और वे ही उत्तम और परोपकारी उत्साह रह जाते हैं कि जिनका उसने जीते जी अभ्यास किया था। ये उसके चारों ओर घिर आते हैं और एक प्रकारकी सीप उसके इर्द गिर्द बना

लेते हैं जिसके बीचमें होकर अब उसे इन सूक्ष्म मानसिक कणोंके किसी किसी प्रकारके कंपनोंका अनुभव हो सकता है।

६२—ये विचार ही जो इसके चारों ओर घिर जाते हैं वे शक्तियां हैं कि जिनके द्वारा वह स्वर्गलोकके धनको खींच सकता है और उसे यह दिखलाई पड़ने लगता है कि यह स्वर्गलोक मानो एक ऐसा भण्डार है कि जिसका अन्त नहीं है परन्तु इसमेंसे वह उतना ही धन निकाल सकेगा जितनी कि उसके विचार और उत्साहोंकी शक्ति है; क्योंकि इस लोक-में ईश्वरका अर्थात् दैवी मन अनन्त विस्तारसे भरा हुआ है, और इस दैवीमनकी अनन्त सम्पत्ति हर एक जीवात्माको उतनी ही उतनी खुली हुई है जितनेके मिलनेकी उसने योग्यता (लियाकत) हासिल कर ली है। जिस मनुष्यने अपने मनुष्यके दरजेकी क्रमोन्नति पूरी कर ली है अर्थात् जिस मनुष्यने उस परमात्माका पूरा अनुभव करके उघाड़ लिया है जिसका कि बीजमात्र उसके भीतर है उसे यह दिखलाई पड़ता है कि इस लोककी सब चमत्कारी बातें उसको सुलभ (आसान) हैं। परन्तु अभी हममेंसे किसीने ऐसा नहीं कर पाया है, और हम केवल धीरे धीरे उस परम पदकी ओर चढ़ रहे हैं इसलिये हममेंसे कोई अभी उसे पूरा पूरा प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

६३—परन्तु हर एकको इस मनलोकसे कुछ न कुछ मिलता है, और इसमेंसे उसे उतना ही अनुभव होता है कि जितनेके

लिये उसने अपने पहिले कर्मोंसे अपनेको योग्य बना लिया है। मनुष्योंको मनकी शक्तियों या लियाकतोंमें एक दूसरेसे बड़ा अन्तर होता है। पूर्वके देशोंमें यह कहावत है कि हर एक मनुष्य अपने अपने साथ अपना प्याला लाता है, कोई प्याला बड़ा होता है और कोई छोटा, परन्तु हरएक प्याला चाहे वह बड़ा हो या छोटा, होता है पूरा पूरा भरा। आनन्द के समुद्रमें इतना आनन्द संमाता है जो सबकी चाहनासे कहीं अधिक है।

६४—इन दिव्य और सुंदर बातोंको मनुष्य केवल उन खिड़कियोंमेंसे देख सकता है जिनको उसने अपने आप बनाई है। इन विचाराकारोंमेंसे हर एक मानो एक ऐसी खिड़की है कि जिसमें होकर बाहरकी शक्तियोंके समाचार मिलते हैं। अगर जीते जी उसने सांसारिक वस्तुओंपर ही मुख्य ध्यान रक्खा हैं, तो उसने अपने लिये ऐसी खिड़कियां बहुत थोड़ी बनाई है कि जिनमें होकर यह उत्तम तेजकी झिलकें उसपर पड़ सकती है। तो भी हर मनुष्यमें जो नीचेसे नीचे जंगली मनुष्यसे कुछ भी ऊंचा है, कुछ न कुछ पवित्र परोपकारी भावका अनुभव हुआ होगा, चाहे वह उसके जीवन भरमें एक बार ही हुआ हो, और यह अब उसके लिये खिड़की बन जायगा।

६५—साधारण मनुष्य इस मनलोकमें बहुत काम नहीं कर सकता है; क्योंकि उसकी दशा मुख्य कर ऐसी है कि केवल

बाहरकी बातोंका असर इसपर हो सकता है न कि इसका उनपर परन्तु इनमेंसे ऐसी बहुत थोड़ी होती हैं कि जो इसके खियालोंकी सीपमें भीतर पार होकर इसको पहुंच सकें। उसके चारों ओर जीवित शक्तियां अर्थात् इस दिव्यलोकके निवासी विशाल देवता होते हैं और इन मंडलियोंमेंसे बहुत सी ऐसी हैं कि जो मनुष्योंके किसी किसी उत्साहके जानलेनेकी बहुत शक्ति रखती हैं और इस बोधके होजानेपर उचित क्रिया करनेमें तत्पर होती है। परन्तु मनुष्य इनसे वहीं तक लाभ उठा सकता है जहाँतक कि उसने अपने आपको इस लाभ उठानेके लिये योग्य बना लिया है, क्योंकि उसके विचार और उत्साह केवल मुख्य मुख्य चाल ढालके होते हैं, और वह नई चाल ढालें एका एकी बना नहीं सकता है। उत्तम विचार कई चाल ढालके हो सकते हैं, कोई उनमेंसे अलग अलग एक एकके विषयमें (व्यक्तिगत) और कोई जाति भरके विषयमें (जातिगत) होते हैं। इस दूसरे भेद किस्ममें शिल्प (कारीगरी) संगीत (गाना बजाना) और विज्ञान शास्त्र हैं, और जो कोई इनमेंसे किसी एकका भी रसिक शौकीन रहा है तो, उसके लिये इतने सुख और इतनी शिक्षा के अवसर तैयार मिलेंगे कि उनकी गिनती नहीं हो सकती, परन्तु उनमेंसे मिलेगा उसको उतना ही कि जितनेकी ग्रहण करनेकी इसे शक्ति है।

६६—हमें बहुतसे मनुष्य ऐसे मिलते हैं जिनके उत्तम

विचार केवल प्रीति और भक्तिके हैं। अगर कोई मनुष्य किसी दूसरेसे बहुत स्नेह करता है या किसी सगुण देवताकी उसमें दृढ भक्ति है तो उसके मनमें उस मित्र या देवताकी चटकदार मूर्ति या शकल बन जाती हैं, और वह मित्र या देवता बहुधा उसके मनमें मौजूद रहता है। यह मानसिक शकल उसके संग स्वर्गमें साक्षात् जाती है, क्योंकि यह उन कणोंकी ही बनी हुई है कि जो स्वर्ग लोक (मन लोक) के हैं।

६७—पहले प्रीतिको लीजिये—जिस स्नेहसे ऐसी शकल बन जाती है और बनी रहती है वह एक बड़ी प्रबल शक्ति है अर्थात् एक ऐसी शक्ति है कि जो इतनी सामर्थ वाली है कि, वह मनलोकके ऊंचे भागमें उस मित्रके जीवात्मा तक पहुंच-जाती है और उसपर असर करने लगती है। यह स्नेह जीवात्माके साथ है, जो कि असली मनुष्य है न कि स्थूल शरीरके साथ, क्योंकि स्थूल शरीर तो उस मनुष्यकी केवल अधूरी नकल है। मित्रकी जीवात्मा स्नेहके कंपनोंका बोध होते ही तत्काल बड़े उत्साहसे उस स्नेहको स्वीकार कर लेती है और उस स्नेह करने वालेके मनशरीरमें जो इसकी शकल बनी है उसमें अपनी जान डालदेती है; और इस रीतिसे उस मनुष्यका मित्र सचमुच उसके पास ऐसा प्रत्यक्ष सा आजाता है कि जैसा पहले कभी नहीं आया था। इसमें इस बातसे कोई अंतर नहीं पड़ता कि यह मित्र जीता है या मरा हुआ है क्योंकि यह स्नेहका बुलावा उस मित्रके उस अंशको नहीं है

जो स्थूल शरीरमें बंधा पड़ा है, परन्तु असली मनुष्यको है कि जो ऊंचे मनलोकमें अपनी असली निज पंक्ति (दरजे) पर स्थित है, और ऐसा कभी नहीं होता है कि ऐसे बुलावेका उत्तर उस (जीवात्मा) से न आवे। जिस मनुष्यके सौ मित्र हों वह एकही साथ और पूरी २ रीतिसे उन सौमेंसे हर-एकको प्रीतिका उत्तर देसकता है, क्योंकि, नीचमनलोकमें चाहे जितने रूप वनाये जावें उनसे वह अनंत जीवात्मा कभी घटता नहीं।

६८—यों स्वर्गकी अवस्थामें हर मनुष्यके चारों ओर वे सब मित्र होते हैं जिनके संगकी उसे इच्छा होती है, और ये सब मित्र उसको सदा अच्छेसे अच्छे दिखलाई पड़ते हैं, क्योंकि जिन मानसिकरूपों (शकलों) में होकर ये उसको दिख-लाई पड़ते हैं वे उसीके मनके और जैसे चाहे वैसे रचे हुए हैं। हमारे स्थूल लोकके अज्ञानके परदेमें जब कभी हम किसी मित्रका स्मरण करते हैं तो हम केवल उसके उतने ही थोड़ेसे अंशका विचार करते हैं कि जितना हमको इस स्थूल-लोकमें भान होता है और यह स्वभाव हमारा इतना पक्का हो गया है कि स्वर्ग अवस्थाकी इस महिमाका अनुभव होना ही एकबार कठिन हो जाता है। जब हम इसका अनु-भव कर सकेंगे तब हमको दिखलाई पड़ने लगेगा कि भूलोक-से स्वर्ग लोकमें अपने मित्रोंके हम असलमें कितने अधिक नगीच हैं। स्वर्गमें ऐसी ही व्यवस्था भक्तिभावमें होती है।

देवता अपने भक्तके निकट तो भूलोकमें भी होता है, परन्तु स्वर्गमें वह इसके दो दरजे अधिक निकट हो जाता है, और इसलिये उस भक्तको स्वर्गमें अत्यन्त अधिक चमत्कार मालूम होता है।

६९—इस मनलोकमें भी वासनालोककी नांई सात दरजे हैं, पहले, दूसरे, और तीसरे *दरजेमें तो जीवात्मा अपने कारणशरीर (विज्ञानमयकोष) को धारण किये हुए रहती है; और जो नीचेके चार दरजे रहे उनके ही कण मनशरीरमें होते हैं, और इन्हीं नीचेके चारों दरजोंमें उसकी स्वर्ग अवस्था बीतती है। वासनाशरीरमें तो एक एक दरजेको अलग २ मनुष्यको उलांघना पड़ता है, क्योंकि वहां वासनाशरीरके कणोंकी रचनाके क्रममें (यातनाशरीरसम्बन्धी) फेरफार होता है, परंतु स्वर्गमें न ऐसा रचनामें फेरफार होता है न एक २ दरजा उलांघना पड़ता है। यहां तो यह होता है कि जिस दरजेकी मनुष्यकी उन्नति हो उसके मेलके दरजेमें मनुष्य खिंच जाता है और उसी दरजेपर वह अपनी सब स्वर्गावस्था अपने मनशरीरमें बिताता है। हर मनुष्य अपनी २ अवस्था अपने आप बनाता है इसलिये व्यवस्थाओंके भेदोंकी गिनती नहीं हो सकती।

७०—हम यह कह सकते हैं कि सामान्य रीतिसे स्वर्गके सबसे नीचे (सातवें) दरजेके निवासियोंमें जो प्रधान गुण देखने-

* ये तीनों दरजे मिल कर महर्लोक कहलाता है।

में आता है वह उसको बिन स्वार्थको कुटुँबको प्रीति है। यह नियमित बात है कि यह प्रीति स्वार्थकी नहीं होनी चाहिये, नहीं तो इसको यहां स्थान नहीं मिल सकता। अगर इस प्रीतिमें कोई स्वार्थका टांका हो तो उसका फल वासनालोकमें ही मिल गया होता। छठे दरजेमें प्रायः सगुण उपासनाके भक्त लोग देखनेमें आते हैं; पांचवेमें वे भक्त हैं जो कर्मयोग (नेकीके कामों)के अनुरागी हैं। इन सबमें अर्थात् पांचवे छठे और सातवें दरजेमें उस भक्तिका फल मिलता है जो किसी न किसी शरीरधारी पुरुषपर हो, चाहे कुटंबोपर, चाहे मित्रोंपर, या चाहे ईश्वरके किसी सगुण रूपपर। परंतु जो भक्ति विस्तारमें अधिक और निष्काम तथा मनुष्य मात्रपर हो वह इससे ऊपरके अर्थात् चौथे दरजेमें प्रगट होती है। इस चौथे दरजे वालोंके कर्म भांत २ के होते हैं, उनके चार मुख्य २ भेद हो सकते हैं (१) अध्यात्मविद्याका निष्काम पढ़ना पढ़ाना (२) उत्तम शास्त्र या पदार्थविद्याका मनन (३) साहित्य या शिल्पकी कुशलता जो निष्काम बातोंमें लगाई जाय, और (४) निष्काम सेवा करना।

७१—इस उत्तम स्वर्ग अवस्थाका भी अन्त आजाता है और तब मनशरीर भी दूसरे और शरीरोंकी नाईं उतर जाता है और तब मनुष्यके कारणशरीर (विज्ञानमयकोष) की जीवन अवस्थाका प्रारम्भ होता है। यहां मनुष्यको कोई खिड़कियां नहीं चाहनी पड़तीं क्योंकि यह उसका असली

घर है, और उस मनुष्यकी सब भीतें (दीवारें) गिर चुकी हैं। बहुतसे मनुष्योंको ऐसे ऊंचे दरजेपर अब भी बहुत ही थोड़ा बोध रह जाता है, वे स्वप्नकी सी दशामें आराममें रहते हैं और कुछ देखते भालते नहीं है, और नाम मात्रको जागते होते हैं और इन्हें योग्यता कम होनेसे थोड़ासा ही दिखलाई पड़ता है, परन्तु जो कुछ दिखलाई पड़ता है वह होता है सच्चा और जैसे जैसे बार बार मनुष्य स्वर्गमें होकर इस कारण-शरीरकी अवस्थामें लौटकर आते हैं वैसे वैसे उनको अधिक-से अधिक दिखलाई पड़ता जाता है और वे स्वयं भी उन्नत होते जाते हैं और यों इस कारणशरीरकी असली जीवनकी अवस्था उनके लिये बड़े विस्तार और सफलताकी होती जाती है।

७२—इस उन्नतिके साथ साथ इस कारणशरीरके जीवनके दिन भी बढ़ते जाते हैं और नीचेके लोकोंके जीवन-समयसे इसका समय बराबर अधिक अधिक बढ़ता जाता है, और जैसे कि मनुष्य उन्नत होता जाता है वैसे ही उसमें लेनेकी ही शक्ति नहीं बढ़ती है किन्तु देनेकी भी; और तब ही उसकी जीतका समय नगीच होता है, क्योंकि यों वह उस शिक्षाको ग्रहण कर रहा है जोकि भगवान्‌ने उपदेश की है। उस शिक्षामें ये ये बातें हैं—यज्ञका ऊंचेसे ऊंचा माहात्म्य, मनुष्योंकी सहायतामें अपने सारे जीवनके लगानेका आनन्द, जगतके लिये अपनी आत्माका समर्पण, मनुष्यकी सेवामें

अपना आत्मबल लगाना और उन सब विशाल दैवी शक्तियों-का पृथ्वीके दुःखी लोगोंकी सहायतामें लगाना। इन सब बातोंसे थोड़ीसी सूचना उस अवस्थाकी होती है जो कि हमारे लिये आनेवाली है। ये सब बातें मानो सोनेकी निसैनीकी सीढ़ियां हैं जिनको कि हम भी जो उसके नीचे किनारेपर खड़े हुए हैं, अपने आगे निकलते हुए देख सकते हैं।

इन सब बातोंके समाचार उन लोगोंको जिन्हें अभी ये नहीं दिखलाई पड़े हैं, इसलिये देना है कि, वे भी अपनी आंखें खोलें और उस प्रभुताईको देखें जो कि अब भी इस कठोर स्थूल लोकमें उनके चारों ओर भरी हुई है, परन्तु इसका उन्हें कुछ भी भास नहीं हो सकता है। ब्रह्मविद्या जो मंगलसमाचार (खुशखबरी) देती है उसका यह सब एक अंश है और वह मंगलसमाचार यह है कि यह उत्तम पद सबको एक दिन निश्चय मिलनेवाला है। यह बात निश्चय यों है कि यह परमपद पहलेसे ही मौजूद है और वंशपरम्परासे इसके हम अधिकारी हैं, परन्तु इसके मिलने-के लिये हमें केवल योग्यता प्राप्त करनी है।



सातवां अध्याय।



पुनर्जन्म (आवागमन)

जीवात्माका अपने निज लोकमें जीवन, उन्नत मनुष्य-के लिये तो बहुत चमत्कारी और संतोषदायक है, परन्तु साधारण मनुष्यपर उसका थोड़ा असर होता है, क्योंकि साधारण मनुष्यका जीवात्मा अभी इतना उन्नत नहीं हो पाया है कि वह अपने कारणशरीरमें सचेत रह सके। प्रकृतिके नियमके अनुसार वह अपने कारणशरीरमें घुस तो जाता है परन्तु इसपर उसे अपने जीवनका स्पष्ट बोध होना बंद हो जाता है, और उसे बड़ी आतुरतासे यह इच्छा होती है कि मुझे जीवनका स्पष्ट बोध फिर होने लग जाय, और यह इच्छा उसे फिर एक वार स्थूलमें उतरनेके लिये फेंक देती है।

२—वर्तमान अवस्थामें मनुष्यकी क्रमोन्नतिका यह ही नियम है अर्थात् यह कि वह स्थूलमें उतरकर उन्नति करे और जो जो अभ्यास स्थूल लोकमें उसने किये हों उनका सार इकट्ठा करके फिर ऊपर चढ़ जाय। उसका असली जीवन इसलिये लाखों वर्षका होता है और जिसको कि हम एक जन्म (जिन्दगी) कहते हैं वह उसके इस बड़े जीवनमें

केवल एक दिनके समान है। असलमें तो वह एक दिनका भी एक छोटा टुकड़ा है, क्योंकि स्थूल लोकमें ७० वर्षके जीवनके पीछे प्रायः उससे बीसगुणा अधिक समय ऊंचे लोकोंमें बीतता है।

३ – हममेंसे हर एकके ऐसे बहुतसे जन्म हो चुके हैं और साधारण मनुष्यको अभी बहुतसे जन्म लेने हैं। ऐसे जन्म मानो पाठशालाके एक एक दिनके समान हैं। जीवात्मा हाड़-मांसका चोला पहनकर कुछ पाठ सीखनेको स्थूललोककी पाठशालामें जाता है। वह अपने पाठशालाके दिनभरमें अर्थात् अपने स्थूलजीवनमें इन बातोंको या तो सीख लेता है या नहीं सीखता है, या कुछ कुछ सीख लेता है और फिर इस हाड़-मांसके चोलेको उतार डालता है, और अपने निज लोकमें विश्राम और चैन पानेके लिये लौटकर घर आजाता है। हरएक नये जीवनके प्रातःकाल (शुरू) में वह अपने पाठ (संबक) को उसी ठोरसे फिर आरम्भ कर देता है, जहांपर कि उसने पहलेकी रातको छोड़ा था। कोई कोई पाठ तो वह एक ही दिनमें सीख लेता है और किसी किसी पाठमें उसे कई दिन लग जाते हैं।

४—अगर वह चतुर विद्यार्थी है और जिस बातकी चाहना (ज़रूरत) हो उसे झटपट सीख लेता है, और अगर पाठशालाके नियम उसके समझमें भली भांति आगये हैं और वह श्रम उठाकर इन नियमोंपर चलता है तो उसकी पढ़ाईके

दिन औरोंसे (निसबत) थोड़े होते हैं; और जब कि पढ़ाई हो चुकती है तो जो बातें उसने सीखी हैं उनसे सजकर वह ऊंचे लोकोंके असली जीवनमें चला जाता है जिसके लिये ये साधन मात्र (तैयारियां) होती हैं। कोई २ जीवात्मा सुस्त लड़कोंकी नाई होते हैं कि जो इतने जल्दी नहीं सीखते हैं; इनमेंसे किसी २ को पाठशालाके नियम समझमें नहीं आते, और इस कारण ये नियम उनके हाथसे बराबर टूटा करते हैं। कोई कोई जीवात्मा हठीले होते हैं और नियमोंको समझ लेनेपर भी वे तत्काल उनपर चलनेको असमर्थ होते हैं, इन सबको बहुत दिनों तक पाठशालामें रहना पड़ेगा, और ऊंचे लोकोंके असली जीवनमें प्रवेश करने (दाखिल) होनेमें जो उन्हें देरी होती है उसका कारण उनके ही कर्म होते हैं।

५—यह एक ऐसी पाठशाला है कि जिसमें कोई विद्यार्थी परिणाममें निरास नहीं रहता है, क्योंकि हरएकको ठेट तक पहुंचना ही पड़ता है। और यह बात उसकी इच्छापर नहीं छोड़ी गई है। परन्तु ऊपरकी परीक्षाकी तैयारीके लिये उसे कितना समय लगेगा, यह बात केवल उसकी ही इच्छापर छोड़ी गई है। जो विद्यार्थी बुद्धिमान है वह यह जानता है कि विद्यार्थीकी अवस्था अपने आप कोई लक्ष्य नहीं है, किन्तु वह एक अत्यंत उत्तम जीवन अवस्थाके लिये साधन मात्र है; और इसलिये वह जहांतक हो सकता है अपनी पाठशालाके नियमोंको भली भांति समझनेका प्रयत्न (कोशिश) करता है

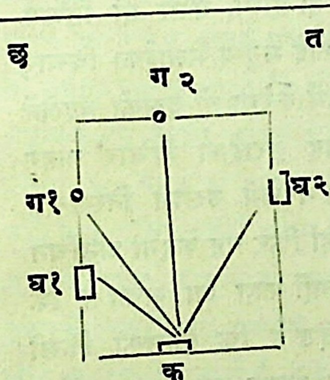
और जहांतक उससे बन सकता है उन नियमोंपर चलता है, जिससे कि जो जो पाठ सीखने हैं उनके सीखनेमें समय व्यर्थ न जाय। वह गुरुदेवोंके अभिप्रायको समझ लेता है, और उसके अनुसार चलता है और जो काम उससे हो सकता है उसे अधिकसे अधिक करनेका वह प्रयत्न करता है ताकि जितनी जल्दी हो सके वह जवान (बालिग़) बन जाय और तेजस्वी आत्मा बनकर अपने लोकमें प्रवेश करे।

६—ब्रह्मविद्या हमको यह भी समझाती है कि वे कौन कौनसे नियम हैं जिन्हें इस विद्यार्थीअवस्थामें हमको पालन करना चाहिये, और यह उनके लिये बड़े लाभकी बात है। इनमेंसे पहला नियम क्रमोन्नतिका है। हर एक मनुष्यको परिपूर्ण (कामिल) बनना है अर्थात् उसमें जो दैवी शक्तियां (रुहानी लियाकतें) छिपी हुई हैं उनको पूरा पूरा उभारना है क्योंकि मनुष्यके लिये इस सारी विश्वरचनाका यही अभिप्राय (मक़सद) है कि ये शक्तियां उभारी जायं। यह क्रमोन्नतिका नियम उसे अधिकसे अधिक करतव्योंके लिये लगातार आगेको दबाता रहता है। जो मनुष्य बुद्धिमान होता है वह यह प्रयत्न करता है कि पहलेसे वह जान ले कि यह क्रमोन्नतिका नियम (कानून कुदरत) उससे क्या क्या कराना चाहता है, अर्थात् वह साधारण पढ़ाईके क्रमसे आगे बढ़नेका प्रयत्न करता है, क्योंकि इस रीतिसे उसको उस नियमके विरोध पड़नेकी जोखम ही नहीं टल जाती है, वरन

उस नियमके वर्तावसे उसे अधिकसे अधिक (मदद) भी मिलती है। जिन्दगीकी दौड़में जो मनुष्य पिछलता है उसे पिछलनेसे यह दवाव वरावर रोकता है और यह दवाव ऐसा है कि अगर कोई इससे उलटा चले तो तुरन्त इससे कष्ट होने लगता है। यों क्रमोन्नतिके मार्गमें पिछलनेवाले मनुष्यको सदा यह जान पड़ता है कि मानो पीछेसे विधाता (क़िसमत) उसे आगेको खदेड़ रहा है; और जो मनुष्य कि विधाताके अभिप्रायको समझकर उसके अनुकूल (मुवाफिक) चलता है, जहां तक कि वह आगे वढ़ता रहे उसे पूरी स्वतंत्रता होती है कि वह जिस ओरको चाहे उस ओरको चले।

७—दूसरा वड़ा नियम कि जिसके ऊपर उन्नतिका क्रम चल रहा है कर्म और कर्मफलका नियम है, अर्थात् जैसा कोई करेगा वैसा पावेगा। कोई ऐसा कार्य या फल नहीं है कि जिसका कारण न हो और हरएक कारणका कार्य या फल विना पैदा हुए नहीं रह सकता है; कार्य और कारण असलमें दो वस्तु नहीं हैं किन्तु एक ही हैं; क्योंकि फल असलियतमें कारणका एक अंश ही है और अगर कोई एकको चला देवे तो दूसरा भी चलने लग जाता है। विधाताके यहां (कुदरतमें) केवल कारण और कार्य अर्थात् कर्म और फलका विचार है न कि इनाम या दण्डका; इस वातको यंत्रविद्यामें या रसायनविद्यामें हरकोई देख सकता है। क्रमोन्नतिके विषयमें यह वात दिव्यदृष्टिवालेको भी उतनी ही प्रत्यक्ष

दिखलाई पड़ सकती है। जो नियम नीचेके लोकोंमें है वह ही ऊपरके लोकोंमें पाया जाता है। अपने यहां यह नियम है कि अगर किसी वस्तुका बिंब* भूमिपर रखे हुए किसी चपटे काचपर पड़े तो उसका प्रतिबिंब उस काचके ऊपरको दूसरी ओरसे धरातलसे उतनाही झुका हुआ उठा होगा जितना कि असली बिंब झुका था ऐसा ही नियम ऊपरके लोकोंमें है। शिल्पविद्याका एक यह नियम है कि† क्रिया और प्रतिक्रिया बराबर होती है परन्तु एक दूसरेसे उलटी



* जैसे एक कमरेमें फ. श फर्श है, फ, छ और श, त दीवारें और छ, त छत है और फर्शपर क, काच रखा हुआ है और दो वस्तुएं एक गोल ग. एक दीवारमें लगी हुई और दूसरी चौकोर घ, १ एक फ, छ दीवार-पर रक्खी हुई है। इन दोनों वस्तुओं-का बिंब क, काचपर पड़कर उनका प्रतिबिम्ब सामनेकी ओर श, त दीवारपर ग २ घ २ पर पड़ रहा है, यहां ग १ और घ १ का झुकाव काच क, पर जितना है, उतना ही झुकाव उसी काचपर उनके प्रतिबिम्ब ग २, घ २, का दूसरी ओर है, अर्थात् कोन फ. क. ग १=कोन श. क. ग २ के और कोन फ. क. घ १=कोन श. क. घ. २, के।

† इसका उदाहरण यह है कि, अगर गेंदको दीवारपर मारें तो वह तत्काल पीछी उछलकर आवेगी और जितने जोरसे फेंको जावेगी उतने ही जोरसे पीछी लौटकर आवेगी।

होती है। ऊंचेके लोकोंके अणु स्थूल लोकसे अत्यन्त ही सूक्ष्म होते हैं, इन अणुओंमें प्रतिक्रिया होती तो है परन्तु ऐसा सदा नहीं होता कि प्रतिक्रिया क्षण भरमें ही समाप्त हो जाय। कभी कभी तो यह इतनी धीरे धीरे होती है कि इसके समाप्त होनेमें बहुत काल लग जाता है परन्तु प्रतिक्रिया टल नहीं सकती, और असली क्रियाके ठीक बराबर होती है।

८—स्थूललोकमें जैसे कि शिल्पविद्याके नियम ऐसे हैं कि उनके वर्तावमें अन्तर नहीं पड़ता और यह निश्चय रहता है कि अमुक क्रियासे अमुक फल ही होगा, वैसा ही निश्चय उस ऊंचे नियमका है कि अगर कोई मनुष्य भलाईका विचार (ख्याल) भेजेगा या भलाईका कर्म करेगा तो उसको बदलेमें अच्छा फल मिलेगा, और अगर वह बुराईका विचार बाहर भेजेगा या बुराईका कर्म करेगा तो बदलेमें उसको निस्सन्देह उतना ही बुरा फल मिलेगा। यहां फिर यह कहना अनुचित न होगा कि इस फलके लिये यह नहीं कहा जा सक्ता है कि वह किसी प्रकार ऐसा इनाम या दंड है कि जिसकी किसी दूसरेने आज्ञा दी हो किन्तु यह केवल उसके ही कर्मोंका निश्चित और शिल्पके नियमोंकी नांई निकला हुआ फल है। लोगोंको स्थूल लोकमें शिल्प अर्थात् यंत्रोंके फल तो भलीभांति परिचय हो गये हैं क्योंकि बहुधा क्रियाका फल तत्काल पैदा हो जाता है और वह उनको दिखलाई पड़ सक्ता है। परन्तु ऊंचे लोकोंमें मनुष्यको प्रतिक्रिया सदा समझमें नहीं आती

क्योंकि इन ऊंचे लोकोंमें प्रतिक्रिया (क्रियाका फल) दूरपर जाके निकलता है और प्रायः इस जन्म भरमें भी नहीं किन्तु आगे किसी जन्ममें पैदा होता है।

६—संसारके साधारण व्यवहारोंमें बहुत सी गूढ़ बातें ऐसी हैं कि जिनको व्यवस्था कर्मके इस नियमसे लग जाती है कि कोई जैसा करता है वैसा पाता है। मनुष्योंकी प्रारब्धमें अन्तर क्यों होता है और स्वयं मनुष्यों मनुष्योंमें भी अन्तर क्यों होता हैं इसकी व्यवस्था कर्मके नियमसे लग जाती है। अगर किसी एक बातमें एक मनुष्य चतुर है और दूसरा मूढ़ तो इसका कारण यह है कि किसी पूर्व जन्ममें उस चतुर मनुष्यने उस बातमें बहुत अभ्यास किया होगा और मूढ़ मनुष्य अब पहले ही पहल अभ्यास करने लगा है। अगर कोई तीव्र बुद्धि वाला होता है या बचपनहीमें असाधारण शक्तियों वाला हो जाय तो यह किसी देवताकी कृपासे नहीं हुआ है किन्तु पहले जन्मोंके परिश्रमका फल है। जो २ गुण और स्वभाव कि इसमें हैं वे हमारे पिछले कर्मोंके फल हैं; ऐसी ही हमारी भांत २ की देशकाल व्यवस्था अर्थात् संपत्तियां विपत्तियां भी हमारे पिछले कर्मोंके अनुसार ही मिलती हैं। हमारे स्वभाव हमारे ही बनाये हुये हैं और देश काल भी हमको वैसे ही मिले हैं जिनके हम अधिकारी हैं।

१०—परन्तु ये कर्मफल हमसे बड़ी युक्तिके साथ भुगताये जाते हैं। यह नियम जड़ तो है और यंत्रोंकी नांई इसका

काम चलता है, परंतु इसका प्रबंध कई बड़े देवताओंके हाथमें हैं। किसी विचार या कर्मका फल जितना होना चाहिये उसमें वे रत्ति भर भी घटा बढ़ा नहीं सक्ते परंतु वे इसके भुगतानेमें थोड़ी बहुत जल्दी या देर कर सक्ते हैं और यह भी उनके हाथमें है कि कर्मफलको चाहे जिस शकलमें भुगतावें।

११—अगर ऐसा नहीं किया जाता तो कमसे कम इतना विरोध पड़जाता कि नीचेके दर्जोंमें मनुष्यसे जो बड़ी २ चूकें हो जाती हैं अगर वे एक साथ भुगताई जातीं तो वह उन्हें सह न सक्ता। परमेश्वरका यह अभिप्राय है कि मनुष्यको थोड़ी सी स्वाधीनता दी जावे; अगर वह इस थोड़ी सी स्वाधीनताको अच्छे प्रकार काममें लाता है तो उसको दूसरी बार कुछ और स्वाधीनताका हक मिलता है। अगर वह स्वाधीनताको बुरी रीतिसे काममें लाता है तो इसके बदले उसको कष्ट मिलता है और वह अपने पहले कर्मोंके कारण पराधीनतामें रहता है। ज्यों २ मनुष्य यह सीखता जाता है कि यह स्वाधीन इच्छा किस रीतिसे काममें लाना चाहिये त्यों २ उसे अधिकसे अधिक स्वाधीनता मिलती जाती है और यों भलाईके लिये उसे जितनी चाहे उतनी स्वतंत्रता प्राप्त हो सक्ती है; परंतु बुराई करनेके लिये उसकी शक्ति पर एक भारी रोक होती है। वह उन्नति तो जितनी जल्दी चाहे उतनी जल्दी कर सक्ता है परंतु यह नहीं हो सक्ता है कि वह अज्ञानसे अपनी जीवनरूपी नौकाको डुबा ही देवे। यह बात स्वाभाविक (कुदरती)

है कि मनुष्यकी जंगली अवस्थाके नीचेके दर्जोंमें सब मिला-कर पुण्यसे पाप अधिक होता है और अगर उसके सारे कर्मोंका इकट्ठा फल उसपर उस निर्बलताकी अवस्थामें एक साथ डाल दिया जाता तो उसकी शक्तियोंके नये और कोमल अंकुर कुचल जाते।

१२—इसके सिवाय उसके कर्मोंका प्रभाव भी भांत २ का होता है। किसी कर्मका फल तत्काल होता है किसी २ का बहुत देरमें, और इसलिये ऐसा होता है कि जब मनुष्य उन्नति कर लेता है तब उसके सिरपर एक बादलका बादल बिना भुगते हुए (संचित) कर्मोंका मंडलाता रहता है जिनमेंसे कुछ पुण्यके (अच्छे) होते हैं और कुछ पापके (बुरे)। संचित कर्मोंके ढेरको उपमाके रूपमें हम यों मान सक्ते हैं कि यह सृष्टिका ऋण उस मनुष्यपर है। इसमेंसे थोड़ा २ उसके हर एक जन्ममें चुकनेके लिये होता है; और जितना जितना कि एक २ जन्ममें चुकना ठहरता है उतना ही उस मनुष्यका उस जन्मके लिये प्रारब्ध कहलाता है।

१३—इस सबका सार यह है कि हरएक मनुष्यके खातेमें कुछ सुख कुछ दुःख मिलनेवाला होता है और यह टल नहीं सक्ता; परंतु वह इसे किस प्रकार सहेगा और इससे क्या काम लेगा ये बातें केवल उसकी ही इच्छापर रहती हैं। यह तो मानो एक नियत शक्ति है कि जो बिना छूटे नहीं रह सक्ती। इस शक्तिको कोई रोक नहीं सक्ता परंतु जैसा कि यंत्र-

विद्यामें भी होता है अगर दूसरी ओरसे काई नया बल लगा दिया जाय तो इस प्रारब्धकी शक्तिका वेग मुड़ जरूर सक्ता है। पिछले पापोंका फल भी दूसरे ऋणों (करजा) से यों मिलता हुआ है कि जैसे धनका ऋण (करजा) चाहे एक बड़ी हुंडी देकर चुका दिया जाय और चाहे छोटे २ नोट देकर; वैसे ही पिछले पाप चाहे एक बड़ी आपत्ति सह कर काट लिये जांय और चाहे छोटे २ दुःख और चिन्ताएं भुगत कर; कभी २ तो यह पापोंका ऋण रेजगारीकी भांत अत्यन्त छोटी २ बहुतसी कुढ़नेकी बातोंसे कट सक्ता है, परंतु यह एक बात पूरी निश्चय है कि किसी न किसी शकलमें यह ऋण उतारना ही पड़ेगा।

१४—इसलिये जो अब हमारी दशा है वह केवल हमारे पिछले कर्मोंका फल है; और इससे यह बात भी निकलती है कि जो नवीन (नये) कर्म हम अब कर रहे हैं उनसे हमारे आगेके जन्मकी दशाकी तय्यारी हो रही है। अगर किसी मनुष्यको यह जान पड़े कि उसके अधिकार या बाहरी संपत्तिमें कमी है तो इस जन्ममें तो स्यात् वह अपने स्वभाव या अपनी दशामें हमेशः हरएक बातको मन चाही नहीं बदल सकेगा परन्तु वह अपने अगले जन्मके लिये जैसी चाहे यहां कमाई कर सक्ता है।

१५—मनुष्यका हरएक कर्म अपने ऊपर ही समाप्त नहीं होता किंतु उसके आस पासके दूसरे लोगोंपर उसका असर पड़नेसे रुक नहीं सक्ता। किसी २ कर्मका असर बहुत हलका

होता है और किसी २ का अत्यन्त भारी। हल्के कर्म चांहे अच्छे हों चाहे बुरे, हमारे कर्मके खातेमें दैव (कुदरत) की वहीमें मानो छोटी २ रकमोंके जमा खर्च हैं, परंतु भारी २ फलवाले कर्म चाहे वे अच्छे हों चाहे बुरे हमारे उस मनुष्यके निजके खातेमें पड़ते हैं जिसका कि उनसे सम्बन्ध है और निज उसी मनुष्यसे उन कर्मोंका भुगतान होता है।

१६—अगर कोई मनुष्य किसी भूखे भिखारीको भोजन देवे या उसे मीठे वचनोंसे प्रसन्न करे तो उस पुण्यका फल उसको दैव (कुदरत) के सामान्य (मुजमिल) खातेसे मिलेगा, परन्तु अगर कोई मनुष्य अच्छा कर्म ऐसा करे कि जिससे किसी दूसरेका सारा जीवनचरित्र बदल जाय तो उसको उस मनुष्यसे आगे किसी जन्ममें इस प्रयोजनसे निश्चय मिलना पड़ेगा कि जिसको लाभ पहुँच चुका है उसे उस भलाईका बदला देनेका अवसर मिल सके। अगर कोई मनुष्य किसी दूसरेका मन दुखावे तो उसे इसके बदलेमें आगे कभी न कभी किसी न किसी प्रकार उतना ही भुगतना पड़ेगा; चाहे वह मनुष्य जिसको रंज पहुँचा है उसे कभी भी न मिले; परन्तु जो मनुष्य किसी दूसरेको भारी हानि (नुकसान) पहुंचाता है अर्थात् जो उसके जिन्दगी भरको विगाड़ देता है या उसकी उन्नतिमें बाधा डाल देता है तो उसे फिर इस मनुष्यके संग आगे जन्मोंमें किसी अवसरपर निश्चय मिलना पड़ेगा कि जिससे इसे यह अवसर मिले कि अपने पापका

बदला उसकी नम्रता और सेवा करके भुगता दे। सारांश यह है कि बड़े बड़े ऋण (करजे) तो निज निज शरीरोंसे भुगताये जाते हैं परन्तु छोटे छोटे ऋणका हिसाब साधारण (आम) रोजनामचेमें ही रहता है।

१७—ये ही बड़ी बड़ी बातें हैं जिनसे यह बात निश्चय की जाती है कि किसी मनुष्यका आगे जन्म कहां होना चाहिये। सबसे पहले सृष्टिके क्रमोन्नतिका बड़ा नियम काम करता है और इस सृष्टिके नियमका यह सुभाव है कि जिस अवस्थामें सहजसे सहज रीतिसे चाहते चाहते गुण बढ़ सकें उसकी ओर मनुष्यको लगाये रहे। इस बड़े प्रबन्धमें मनुष्यकी कई मुख्य जातियां रक्खी गई हैं जिनको मूलजाति (Root races) कहते हैं और इन्होंने पृथ्वीपर एक दूसरेके पीछे उत्पन्न होकर प्रभुता पाई है। इनमेंसे एक आर्योंकी बड़ी जाति भी है (Indo-Caucasian) जिसमें कि आजकल पृथ्वीके सबसे बढ़े हुए मनुष्य शामिल हैं। इससे पहले क्रमसे मंगोलजाति उत्पन्न हुई थी, जिसे ब्रह्मविद्या सभाकी पुस्तकोंमें ऐटलांटियन इसलिये कहते हैं कि जिस स्थलपर रहकर उन्होंने पृथ्वीका राज्य किया था वह उस ठोर था जहां अब ऐटलांटिक समुद्र भरा हुआ है। इस जातिके पहले हबशी (Negroid race) थे जिनके वंशमेंसे कुछ अब भी हैं परंतु दूसरी नवीन जातिकी शाखाओंसे अब ये बहुत कुछ घुल मिल गई है। इन बड़ी मूल जातियोंमें-

से हर एकमेंसे बहुतसी शाखा निकली हैं जिन्हें हम उपजाति कहते हैं; जैसे कि रोमांस और ट्युटानिक और फिर हर एक-की शाखा हैं जैसे कि पहलेमेंसे फरांसीसी और इटलीवाले, और दूसरीमें अंग्रेज और जर्मन।

१८—ये प्रबंध इसलिये किये जाते हैं कि देश, काल और व्यवस्था भांत २ की मिल सके कि जिनमेंसे जीवात्माको अपने लिये चुननेमें सुभीता पड़े। जात २ के लोगोंको अपनी २ उन्नतिके लिये अलग २ गुण चाहने पड़ते हैं और अपने २ लोगोंके ऐसे गुणोंके बढ़ानेके लिये हर एक जातिमें विशेष योग्यता होती है। हर एक देशमें व्यवस्थाएं इतनी भांत २ की होती हैं कि प्रायः गिनतीमें नहीं आसक्ती हैं, जैसे धन, दरिद्रता, अवसरों (मौकोंका) बहुत २ मिलना, या सर्वथा न मिलना, बढ़नेके लिये सुभीते, या भांत २ की कठिनाइयां। क्रमोन्नतिका नियम स्वभावसे ही इन सब अनन्त व्यवस्थाओंमें-से चुनकर उन व्यवस्थाओंमें मनुष्यको लेजाता है कि जो उसकी जरूरतोंके लिये उस समयपर अच्छीसे अच्छी हैं।

१६—परन्तु इस नियमके साथ ही साथ एक दूसरा नियम कर्म और कर्मफलका और लगा रहता है जिसका कि पहले वर्णन हो चुका है। शायद मनुष्यके पिछले कर्म ऐसे न हुए हों कि जिनसे उसको (यों कहो कि) अच्छेसे अच्छे अवसर मिल सकें; अर्थात् उसने अपने पिछले जन्मोंमें कोई ऐसी क्रिया चलाई हो कि जिनका निश्चित फल यह हो कि उसके

लिये अब वंधन या रोके पैदा हों और इन बन्धनोंसे उत्तमसे उत्तम अवसरोंके मिलनेमें बाधा पड़ सकती है और यों अपने ही पिछले कर्मके प्रतापसे अब उसको कुछ घटिया दरजेके अवसरोंपर ही संतोष करना पड़ेगा। इसीलिये हम यह कह सकते हैं कि क्रमोन्नतिका नियम अगर उसमें छेड़ छाड़ न की जाय तो हरएक मनुष्यके लिये अच्छीसे अच्छी बात करेगा परन्तु मनुष्यके ही पहलेके कर्मोंसे इस नियमकी क्रियामें बाधा (हरज) पड़ जाती है।

२०—इस वंधनके प्रसंगमें एक बड़ी बात यह है कि अगर किसी मनुष्यने किसी एक मण्डली या जनसमूहके सारे जीवात्माओंके साथ पिछले जन्मोंमें सम्बन्ध कर लिया है तो उनका उसपर बड़ा असर होता है और इस असरसे लाभ भी हो सकता है और हानि भी। यह असर उन जीवात्माओं-का होता है कि जिनके साथ उसने प्रीति या द्वेषकी, सहायता या विरोधकी गाढ़ी गांठ बाँध रक्खी है; और यह यों है कि पिछले सम्बन्धोंके कारण उन जीवात्माओंसे इसे फिर मिलना पड़ता है। यह ठहरानेके पहले कि इसको कहां और किस प्रकार जन्म दिया जावे इसका उन जीवात्माओंके साथ जो सम्बन्ध है उसपर विचार कर लेना पड़ता है।

२१—परमेश्वरकी इच्छा यही है कि मनुष्यकी क्रमोन्नति हो। परमेश्वरकी इच्छाकी सूचना सृष्टिकी प्रकृतिसे होती है और इस प्रकृतिका यह प्रयत्न रहता है कि मनुष्यको वही

बात दी जाय जो उसकी उन्नतिके लिये अच्छीसे अच्छी हो; परन्तु इसमें केवल मनुष्यके पिछले पुण्यों और पिछले सम्बन्धोंसे हेर फेर हो जाता है। यह बात मानी जा सकती है कि जन्म लेनेपर मनुष्यको जो जो बातें उस जन्ममें सीखनी हैं वे सैंकड़ों अवसरमेंसे चाहे किसी एक अवसरमें सीखी जा सकती हैं। इनमेंसे आधे या आधेसे अधिक अवसरोंका मेल तो उसके पिछले बहुतसे और भांति भांतिके कर्मोंके कारण नहीं मिल सकेगा। अब जो थोड़ेसे अवसर रहे उनमेंसे कौनसा अवसर लिया जाय इसके निश्चय करनेमें यह विचार करना होता है कि उसके कुटुम्बमें या पड़ोसमें कौन कौनसे जीवात्मा हैं जिनके साथ इसको सेवा या प्रेमका बदला लेना या देना है।



अध्याय आठवां।

—:❀:—

जीवनका अभिप्राय।

(जिन्दगीका मकसद)



वी प्रवन्धमें हमारे जो जो करतव [फरज] हैं उन्हें पूरा करनेके लिये हमको इस सारे प्रवन्धका सामान्य वृत्तान्त ही नहीं किन्तु यह भी व्यौरा समझ लेना चाहिये कि मनुष्यको इसमें विशेषकर क्या क्या करना है। दैवीप्रवाह प्रकृतिमें उतरते उतरते गहरेसे गहरे खनिज सृष्टि-कंकड़ पत्थर आदिमें पहुंचा, परन्तु इस समूहीप्रवाहमें भिन्न भिन्न होनेकी अंतिम दरजेकी व्यवस्था खनिज सृष्टिमें अर्थात् प्रकृतिमें गहरेसे गहरे प्रवेशपर तो नहीं हुई, किन्तु उस अवसरपर हुई कि जव वह प्रवाह क्रमोन्नतिमें ऊपर चढ़ता हुआ मनुष्य सृष्टिमें पहुँचा। हमको इस उन्नतिके क्रममें यों तीन खण्डोंका अनुभव करना है।

(क) प्रवाहका उतार जिसमें भिन्नता और स्थूलता (घनता) वढ़ती जाती है। इस खंडमें आत्मा पदार्थ (माद्दे) में लिपटती जाती है कि जिससे उसमें होकर आत्माको स्पर्शोंका बोध हो सके।

(ख) प्रवाहका ऊपर चढ़नेका पहला भाग जिसमें

झुकाव अधिकतर भिन्नताकी ओर होता है, परन्तु साथ ही साथ झुकाव अधिकतर आध्यात्मिकताकी बढ़ती और स्थूलताके घटावका होता है। इस खण्डमें आत्मा पदार्थपर अधिकार जमाना सीखने लगती है और उसे ऐसा दिखलाई पड़ने लगता है कि पदार्थ भी आत्माका ही एक रूप है।

(ग) प्रवाहका ऊपर चढ़नेका दूसरा भाग जिसमें कि भिन्नता बढ़ते बढ़ते अंतिम दरजेपर पहुंच जाती है और एकता और अधिकतर अध्यात्मकताकी ओर झुकाव हो जाता है। पदार्थमें होकर स्पर्शोंका बोध करना और पदार्थमें होकर अपने आपको प्रकट करना भी भलीभांति सीखकर और अपनी गुप्त शक्तियोंको जगाकर अब आत्मा इस खंडमें यह बात सीखती है कि ये शक्तियां परमेश्वरकी सेवामें उचित रीतिसे कैसे काममें लाई जायं।

२—पहलेकी सारी क्रमोन्नतिका अभिप्राय यह रहा है कि ईश्वरांश जीवात्माकी शकलमें प्रकट हो जाय। फिर जीवात्मा भी नीचे उतरता हुआ अपनेको लगातार शरीरोंमें डालकर अपनी उन्नति करता है। जो मनुष्य इस बातको नहीं समझते हैं वे जैसा कि इन शरीरोंमें जीवात्माका दर्साव होता है उसीको आत्मा मान लेते हैं और इसलिये उसीके निमित्त जीते हैं और अपने जीवनका ढंग ऐसा बना लेते हैं कि मानो उसके क्षणिक लाभ ही उसके लक्ष्य हैं। जो मनुष्य कि समझता बूझता है वह यह जानता है कि जीवात्माका जीनव

ही केवल एक मुख्य बात है, और केवल इसीकी उन्नतिके लिये क्षणिक शरीर धारण किये जाते हैं। इसलिये जब यह निश्चित करनेका समय आता है कि दो मार्गोंमेंसे कौनसा मार्ग लिया जाय तब वह साधारण मनुष्यकी नांई यह नहीं सोचता है कि इन दोनोंमेंसे किससे मुझे शरीरधारी कामात्माके वेषमें अधिक सुख और लाभ पहुंचेगा किन्तु वह यह सोचता है कि मुझ जीवात्मारूपको अधिक उन्नति किससे मिलेगी। अनुभवसे वह यह बात जल्दी जान लेता है कि कोई चीज जो सबकी भलाईकी नहीं हैं वह उसके लिये या किसी औरके लिये सचमुच भलाईकी कभी नहीं हो सक्ती है, और इसलिये जल्द ही वह यह सीख लेता है कि अपने आपको सर्वथा भूल जाना चाहिये और केवल वही बात मांगना चाहिये जो मनुष्यमात्रके लिये उत्तम हो।

२—इसलिये यह बात चौड़े है कि उन्नतिके इस दरजेपर जिस किसी बातसे एका बढ़े और जिस किसी बातसे आध्यात्मिकता बढ़े वही हमारे लिये परमेश्वरकी मनशाके अनुकूल है, और इसलिये वही हमारे लिये उचित है; और जो कुछ कि भिन्नता या स्थूलता बढ़ावे वह निस्संदेह हमारे लिये उतनी ही अनुचित है। कोई कोई विचार और वासनाएं एकता करनेवाली होती हैं; जैसे कि प्रेम, सहानुभूति, (हमदरदी) सन्मान, उदारता। कुछ ऐसी हैं कि जिनसे भेद पड़ता है जैसे कि द्वेष, जलन, ईर्षा, अभिमान, निर्दयता, भय। इनमेंसे

पहले अर्थात् प्रेमादिक तो हमारे लिये उचित हैं और दूसरे द्वेषादिक हमारे लिये अनुचित हैं।

४—इन सब विचारों और वासनाओंमें जो कि हमारे लिये चौड़े चौड़े अनुचित हैं हमको एक विशेष बात दिखलाई पड़ती हैं अर्थात् स्वार्थपन; और उनमें जो कि हमारे लिये चौड़े चौड़े उचित हैं हमें यह दिखलाई पड़ता है कि विचार, दूसरोंके सानुकूल है और उनमें स्वार्थपनके विचारका अभाव है। इसलिये हमें यह दिखलाई पड़ता है कि स्वार्थपनही एक बड़ा दोष है और पूर्ण स्वार्थपनेका अभाव अर्थात् पूर्ण परमार्थपन सब गुणोंका शिरोमणि है। इससे हमको तत्काल एक स्थायी नियम वर्तनेके लिये मिलता है। जो मनुष्य ज्ञानपूर्वक दैवी इच्छाके अनुकूल चलना चाहे उसे अपनी कामात्माके अर्थ या सुखका विचार अलग रख देना चाहिये और दूसरोंकी भलाई और आनन्दके लिये काम करते हुए केवल उस दैवी इच्छाको पूरा करनेमें अपनेको लगा देना चाहिये।

५—यह एक ऊंचा लक्ष्य है और इसका प्राप्त होना कठिन है, क्योंकि हमारे आचरण इतने बहुत कालसे स्वार्थपनके चले आये हैं। हम सब प्रायः अभी शुद्ध परोपकारी भावके दर्जेसे बहुत नीचे हैं; और हममें अभी अवगुण इतने भरे हुए हैं और बहुतसे सद्गुण अभी इतने पक्के नहीं हो पाये हैं कि जितने होना चाहिये इसलिये यह प्रश्न उठता है कि उस शुद्ध परोपकारी भावके प्राप्त करनेके लिये क्या करना चाहिये—

६—यहां हमें उस बड़े नियमकी सहायता लेनी पड़ेगी जो कर्म और कर्मफलका है और जिसका हम पहले वर्णन कर चुके हैं। जैसे कि हम इस स्थूललोकके प्राकृतिक नियमोंसे निश्चयके साथ काम लेते हैं वैसे ही हम सूक्ष्मलोकके इन नियमोंसे भी काम ले सकते हैं। अगर हममें अवगुण हैं तो वे अज्ञान और भोगोंमें रत होनेके कारण धीरे धीरे बढ़ गये हैं। अब वह अवस्था आ गई है कि ज्ञानके कारण अज्ञान उठ गया है अर्थात् हमको अवगुणमें दोष प्रतीति होने लग गया है इसलिये इस दोषसे छुटकारा पानेका जो मार्ग है वह हमारे सामने चौड़े आगया है।

७—इन सब दोषोंमेंसे एक एक दोषका उल्टा एक एक सद्गुण है; अगर इनमेंसे कोई एक दोष भी हममें सिर उठाता जान पड़े तो हमें तत्काल अपने भीतर उसके उलटे सद्गुणको बढ़ानेके लिये विचारपूर्वक प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये। अगर किसी मनुष्यको यह अनुभव हो जाय कि वह पहले स्वार्थी रहता आया है तो इसका अर्थ यह है कि उसने अपनेमें इस बातका स्वभाव डाल लिया है कि सबसे पहले अपने आपका और अपनी प्रसन्नताका विचार करे और अपने ही आराम और सुखको देखे और इसका दूसरोंपर क्या असर होगा इसपर पूरा ध्यान न दे। अब उसको विचारपूर्वक ठीक इससे उलटे स्वभाव बनानेपर लग जाना चाहिये, और यह नियम कर लेना चाहिये कि किसी कामके करनेके पहले यह

सोच लिया करे कि इसका असर उसके आस पासके लोगों-पर कैसा होगा। उसे दूसरोंको प्रसन्न करनेका अभ्यास करना (आदत डालना) चाहिये चाहे उसको इसमें कष्ट या हानि ही क्यों न हो। इससे धीरे धीरे उसका सहज सुभाव पड़ जायगा और इसको बढ़ानेसे उसके स्वार्थपनका अवगुण जाता रहेगा।

८—अगर किसी मनुष्यको जान पड़े कि वह शंकासे भरा हुआ है और सदा उसके आस पासके लोगोंपर यह लांछन लगानेको तैयार रहता है कि जो कर्म वे कर रहे हैं उनके हेतु बुरे हैं तो उसे इस बातका सदा अभ्यास करना चाहिये कि अपने साथियोंका विश्वास करे, और यह समझता रहे कि उनके अभिप्राय (नियत) सदा उत्तमसे उत्तम हैं। यहां यह कहा जा सकता है कि अगर कोई मनुष्य ऐसा करेगा तो उसे धोखा खाना पड़ेगा, और बहुत बार उसका विश्वास झूठा निकलेगा। परन्तु यह छोटी बात है। धोखेके डरसे सदा अविश्वासी बने रहनेसे तो यह बहुत अच्छा है कि वह अपने साथियोंका विश्वास करके धोखा खाय। इसके सिवाय विश्वाससे शुभचिंतकता उत्पन्न हो जाती है। अगर किसी मनुष्यका तुम विश्वास करोगे तो वह प्रायः यह दिखला देगा कि वह विश्वासके योग्य है, परन्तु अगर तुम किसी मनुष्यपर शंका करोगे तो वह प्रायः जल्दी ही तुम्हारी शंकाको सच्ची कर देगा।

९—अगर किसीको अपनेमें लालचकी आदत दिखलाई पड़े तो उसे चला चलाकर विशेष रीतिसे उदार होना चाहिये; अगर वह चिड़चिड़ा हो तो उसे शांतिका निरन्तर अभ्यास करना चाहिये; अगर उसमें कुतुहल अर्थात् दूसरोंके भेदोंको वृथा खोज करनेका व्यसन हो तो उसे इस लालसाको बार बार ध्यान रखकर रोकना चाहिये; अगर उसे उदासीके वेग आते हों तो उसे निरन्तर और चाहे कैसे प्रतिकूल अवसर क्यों न आवें प्रसन्नताका अभ्यास रखना चाहिये।

१०—किसी मनुष्यके स्वभावमें अगर कोई अवगुण हो तो उसका अर्थ यह है कि इसके उल्टे गुणका उसकी आत्मामें अभाव है। उस अवगुणको दूर करनेका, और उसको फिर न आने देनेका सबसे छोटा रास्ता यह है कि जीवात्मामें जो अभाव अर्थात् रीती (खाली) ठोर है उसको भर दिया जाय और जो सद्गुण कि यों उभरेगा वह भिद कर उसके स्वभावमें आगे जन्मोंमें बराबर दर्सता रहेगा। जीवात्मामें बुराई तो नहीं रह सक्ती है परन्तु भलाईमें कमी रह सक्ती हैं। जीवात्मामें केवल सद्गुण ही उभर सके हैं और जब ये गुण अच्छी तरहसे उभर आते हैं तब वे उसके सारे शरीरोंमें अर्थात् विचारों, वासनाओं, और कर्मोंमें दिखलाई पड़ने लगते हैं; और इसलिये इन सबमेंसे किसीमें इन सद्गुणोंके उल्टे अवगुणके दोष नहीं रह सकते हैं; परंतु जीवात्मामें जहां कहीं कोई खाली ठोर पड़ी हैं अर्थात् कोई

सद्गुण बिना खिला पड़ा हुआ है वहां उसके मन या वासनाओंमें कोई ऐसी बात नहीं मिलती है कि जो उस सद्गुणके उलटे अवगुणके उगनेको रोक सके; और लोकमें उसके आस पास दूसरे लोगोंमें यह अवगुण पहलेसे ही होता है और मनुष्य मानो ऐसा पशु है कि जो औरोंकी देखा देखी करने लगता है; इसलिये प्रायः यह अवगुण उसमें भी जल्दी प्रकट हो जाता है। परंतु यह अवगुण शरीरों ही का है न कि भीतरके मनुष्यका। इन शरीरोंमें इस अवगुणके वेर २ उठनेसे एक ऐसा बड़ा वेग खड़ा हो जाता है कि जिसका जीतना कठिन होता है; परंतु अगर जीवात्मा अपनेमें इसके उलटे सद्गुणके बनानेका प्रयत्न करती है तो यह बुराई जड़से कट जाती है और न फिर इस जन्ममें न आगे किसी जन्ममें हो सक्ती है।

११—मनुष्य जब इन सद्गुणोंको अपनेमें उभारनेका प्रयत्न करता है तब उसे कई प्रकारकी बाधा होती है, इसलिये उसे यह सीख लेना चाहिये कि इन बाधाओंको कैसे दबावें। इन बाधाओंकी गिनतीमें आज कल दोष ढूंढने (नुकता चीनी) की रुचि है अर्थात् किसी बातमें दोष निकालना, हरएक वस्तुको निदरना, हरएक वस्तु और हरएक मनुष्यमें दोष देखना। उन्नतिके लिये ठीक इससे उलटा करना चाहिये। जो मनुष्य उन्नतिके मार्गमें जल्दी चलना चाहे उसे यह सीख लेना चाहिये कि हरएक वस्तुमें भलाई देखे अर्थात् हरएक वस्तुमें और हरएक मनुष्यमें जो छिपा हुआ ईश्वर है उसको

देखे। उन दूसरे लोगोंको वह केवल इसी रीतिसे सहायता देसक्ता है और केवल इसी रीतिसे वह उन दूसरी वस्तुओंमें से अच्छासे अच्छा लाभ उठा सक्ता है।

१२—दूसरी बाधा धीरजका अभाव है। आज कल हम जल्द उकता जाया करते हैं अगर हम किसी कामको हाथमें लेते हैं तो उससे तत्काल फल मिलनेकी आशा करने लगते हैं, और अगर तत्काल फल नहीं मिलता है तो हम उस कामको छोड़ देते हैं और कोई दूसरा काम करने लगते हैं। अध्यात्मिक उन्नति करनेकी यह रीति नहीं है। जो यत्न कि हम कर रहे हैं वह यह है कि सामान्य रीतिसे जो उन्नति सैंकड़ों जन्मोंमें होती वह एक या दो जन्मोंमें ही प्राप्त हो जाय। यह ऐसा काम नहीं है कि जिसमें तत्काल फल मिलनेकी आशा की जा सके। जब हम किसी बुरी आदतको उखाड़ डालनेका प्रयत्न करने लगते हैं, तब हमको यह काम कठिन जान पड़ता है; इसका क्या कारण है ? इसका यही कारण हैं, कि इसका व्यसन हमको शायद बीस हजार वर्षोंसे चला आया है और बीस हजार वर्षोंकी आदत एक या दो दिनमें कभी नहीं मिट सक्ती। हमने इस आदतका वेग अत्यन्त बढ़ जाने दिया है, और जबतक हम इस वेगको नहीं दबालें तबतक उन व्यसनोंके उल्टे सद्गुणकी ओर हम कोई बल नहीं लगा सक्ते हैं। यह काम एक पलमें होनेका नहीं है, परंतु यह निश्चय हैं कि अगर हम स्थिरतासे लगे रहें तो होजानेमें संदेह नहीं है;

क्योंकि वह वेग कितना ही बड़ा क्यों न हो निदान है अंत-वाला; परंतु जो बल कि हम इसको दबानेमें लगा सक्ते हैं वह मनुष्यकी इच्छा शक्तिका अनंत (आत्मिक) बल है जो कि दिन २ वर्ष २ ही नहीं, किंतु चाहे तो जन्म जन्मान्तर तक जतनपर जतन करनेमें लगा रह सक्ता है ।

१३—दूसरी कठिनाई यह है कि हमारे विचारों (खयालों) में निर्मलता (सफाई) नहीं होती । पश्चिम देशके लोगोंको धर्म-की बातोंमें निर्मल विचार करनेका कम अभ्यास होता है । उनके विचार गोल मोल और विना कटे छटे होते हैं । और इनसे अध्यात्मिक उन्नतिमें काम नहीं चल सक्ता । चाहिये तो यह कि हमारे संकल्प साफ और हमारे विचारोंके आकार कटे छटे हों । दूसरे और गुण जो चाहिये वे शांति और प्रसन्नता है । आजकल ये गुण विरलोंमें मिलते हैं, परंतु जो काम कि हम यहां करना चाहते हैं उसमें इनके विना कभी काम नहीं चल सक्ता ।

१४—स्वभाव वनानेकी क्रिया ऐसी ही प्रमाणिक है जैसे कि शरीरके पट्ठोंके वढ़ानकी । बहुधा मनुष्य जब यह देखते हैं कि उनके शरीरके पट्ठे ढीले और निर्वल पड़ गये हैं तब यह समझ लेते हैं कि उनकी यह दशा प्रकृतिसे ही है और इस निर्वलताको अपने ही दुर्भाग्यकी वात समझ लेते हैं; परंतु जो कोई मनुष्यके शरीरका कुछ भी हाल जानता है उसे यह खबर है कि वरावर व्यायाम (कसरत) करनेसे ये पट्ठे वलिष्ठ

(तनदुरुस्त) हो जायंगे और सारा शरीर अच्छा बन जायगा। ठीक इसी तरह बहुतसे लोग बुरे स्वभावके या लालची या शंकावाले या विषयी होते हैं, और जब इन दोषोंके वस वे कोई बड़ी चूककी बात कर बैठते हैं या किसीकी बड़ी हानि कर देते हैं, तब वे यह बहाना करते हैं कि हमारा उतावला स्वभाव है या यह कि हमारे दैव गतसे (कुदरतसे) यह सुभाव है या वह स्वभाव है और ऐसा कहके यह दरसाते हैं कि दैव गतमें उनका वस नहीं चलता है।

१५—शरीर बनानेकी नांई अपने सुभाव बनानेमें भी उपाय हरएकके हाथमें ही है। ठीक २ शारिरिक अभ्यासके बराबर करते रहनेसे पट्ठे पुष्ट हो जाते हैं और ठीक २ मानसिक अभ्यास बराबर करनेसे मनुष्यके स्वभावमें जो कोई गुण अदृष्ट (छिपा) हो वह उभर आता है। साधारण मनुष्य यह नहीं जानता है कि वह ऐसा कर सक्ता है, और अगर वह देख भी ले कि ऐसा हो सक्ता है तो भी वह करनेका साहस नहीं करता है, क्योंकि इसमें बहुत परिश्रम होता है और मनको बहुत रोकना पड़ता है। उसे कोई ऐसा बड़ा लाभ नहीं दिखलाई पड़ता है कि जिसके लिये वह ऐसे कष्ट और परिश्रमका भार अपने ऊपर लेवे।

१६—इस भारके उठानेकी रुचि तो असली बातके जान लेनेपर होती है। जिस किसीको बुद्धिपूर्वक यह समझमें आ जाता है कि क्रमोन्नति किस सीध (रुख) में चल रही है

वह उसके अनुसार चलनेमें अपना केवल लाभ ही नहीं समझता किंतु उसमें अपना गौरव (फखर) और आनन्द मानता है। अगर कोई मनुष्य किसी बातके करनेका संकल्प कर ले तो मानो उसने उन बातोंके करनेका भी संकल्प कर लिया है कि जो उस बातके सहायक हैं; इसलिये अगर लोकोपकार करना चाहे तो उसको अपनेमें उन गुणों और बलको उभार लेना होगा कि जिनकी लोकोपकार करनेके लिये जरूरत होती है। इसलिये जो मनुष्य लोकका सुधार करना चाहता है उसे सबसे पहले अपना सुधार करना चाहिये। उसे यह स्वभाव डालना चाहिये कि अपने लेनेपर स्वत्व (हक्क) आग्रह करनेकी आदत सर्वथा छोड़ दे और अपने कार्य कर्मों (फरज) के भारको तत्परतासे उतारनेमें सर्वथा लग जाय। उसे यह सीख लेना चाहिये कि उसके साथियोंके संग जो जो उसके सम्बन्ध हैं वे सब उनको सहायता करनेके लिये या किसी न किसी प्रकार उनकी भलाई करनेके लिये उसे अवसर मिले हैं।

१७—जो मनुष्य इन बातोंको समझ कर अभ्यास करता है उसे यह अनुभव हो जाता है कि विचारकी शक्ति अत्यन्त प्रबल है और इसको पूरे बसमें रखना चाहिये। सब कर्म सोच विचारसे उत्पन्न होते हैं क्योंकि अगर कर्म विना विचारके हो भी जाय तो भी उसकी सहज उत्पत्ति उन विचारों, इच्छाओं और वासनाओंसे है कि जिनको मनुष्यने अपनेमें पहलेके दिनोंमें अति विस्तारसे बढ़ने दी हैं।

१८—चतुर मनुष्य इसलिये अपने बिचारपर बड़ी चौकसी रखता है क्योंकि यह विचारशक्ति उसके लिये एक प्रवल हथियार है, और उसपर इस बातका भार है कि इस हथियारसे उचित काम लिया जाय। उसका यह काम है कि अपने मनको बसमें रक्खे जिससे यह न तो दुंद मचाने पावे और न इससे स्वयं उसको और दूसरोंको हानि पहुंचने पावे। चतुर मनुष्यका यह भी काम है कि वह अपनी विचारशक्तिको बढ़ावे क्योंकि इससे वहुतसा असली और चलाकर भलाई करनेका काम हो सक्ता है। इस तरह अपने विचार और कर्मोंको बसमें रखकर और सब बुराइयोंको अपनेमेंसे निकालकर और अपने सद्गुणोंको उघाड़कर मनुष्य अपने साथियोंसे जल्दी बहुत ऊंचा बढ़ जाता है, और उनमें इसकी इस बातकी चौड़े प्रतिष्ठा हो जाती है कि यह बुराईके दवानेके लिये भलाईकी ओर, और जड़ताको दबानेके लिये उन्नतिकी ओर चल रहा है।

१९—श्वेत महामंडलके महर्षि, जिनके हाथमें जगत्की उन्नतिका भार है सदा ऐसे योग्य मनुष्योंकी तलाशमें इसलिये रहते हैं कि उनको सिखाकर इस बड़े कार्यमें उनसे काम लें। ऐसा कोई मनुष्य हो उसपर उन महात्माओंकी दृष्टि पड़े बिना नहीं रहती, और वे अपने कार्य्यमें उससे काम लेने लग जाते हैं। अगर वह अच्छा और कामका निकले तो वे जल्दी उसे अवसर इस बातका दे देते हैं कि वह चाहे तो उम्मेदवार बना लिया जाय और उसे विशेष शिक्षा दी जाय कि जिससे

वह इन महात्माओंको जगत्के इस कार्य्यमें सहायता देकर एक दिन उन जैसा हो जावे और उनके प्रतापशाली महामंडलमें भरती हो जावे।

२०—परन्तु ऐसे प्रतापशाली पदके लिये केवल साधारण भलाईसे काम नहीं चलता। यह सच है कि सबसे पहिले मनुष्यको भला होना चाहिये, नहीं तो उससे काम लेनेका विचार करना ही व्यर्थ होगा। परन्तु भला होनेके साथ ही साथ उसे बुद्धिमान् और दृढ भी होना चाहिये। जरूरत एक बड़ी अध्यात्मिक शक्तिकी है न कि केवल भलमनसाही की। उस्मेद्वारको सब साधारण दोष ही नहीं छोड़ने होते हैं किंतु दृढ़ताके साथ सद्गुण भी प्राप्त करने होते हैं, नहीं तो उसे स्वीकार होनेकी आशा करना वृथा है। भूल चूकोंसे भरी हुई और स्वार्थी रहन गतसे अब उसे नहीं रहना पड़ेगा किंतु उसे ऐसे चतुर जीवात्माकी नांई रहना पड़ेगा कि जिसको यह समझमें आ गया हो कि इस जगत्के विशाल प्रबंधरूपी नाटकमें उसे क्या खेल खेलना है। उसे अपने आपको सर्वथा भूल जाना होगा; उसे संसारी लाभ या सुख या बढ़ोतरीका सारा विचार छोड़ देना पड़ेगा; उस कामके लिये जो कि करना है उसे सर्वस्व त्यागनेको और सबसे पहिले अपने आपको त्यागनेको तैयार होना चाहिये। वह संसारमें रहेगा परंतु संसारी नहीं रहना होगा। उसे लोक लाजकी कुछ भी चिंता न होनी चाहिये। लोककी सेवाके लिये उसे अपनेको

मनुष्यसे कुछ ऊंचा बना लेना चाहिये। प्रसन्न मुख, प्रफुल्लित चित्त, और दृढ़ होकर उसे यह चाहिये कि वह केवल दूसरोंके अर्थ ही जीवे और लोकमें परमेश्वरके प्रेमका सोता (श्रोता) बने। यह लक्ष्य ऊंचा तो है किंतु अति ऊंचा नहीं है, और यह अनहोना नहीं है क्योंकि ऐसे मनुष्य मौजूद हैं; जो इसको प्राप्त कर चुके हैं।

२१—छिपी हुई शक्तियोंको अब कोई मनुष्य इतना उघाड़ लेवे कि गुरुदेवोंका ध्यान उसकी ओर खिंच आवे तो उनमेंसे कोई न कोई उसको प्रायः जांचनेके लिये उम्मेदवार बना लेते हैं। यह जांच प्रायः सात वर्षकी होती है, परन्तु गुरुदेव उचित समझें तो इसको घटा बढ़ा सकते हैं। यह समय पूरा हो जानेपर अगर उसका काम ठीक रहा है, तो वह ऐसा चेला बन जाता है जिसे प्रायः स्वीकार किया हुआ चेला कहते हैं। उससे गुरुदेवके साथ नगीचका सम्बन्ध हो जाता है जिससे कि गुरुदेवके भाव उसपर लगातार पड़ते रहते हैं, और हर-एक बातको जिसभावसे गुरुदेव देखते हैं यह भी धीरे धीरे उसी भावसे देखने लग जाता है। फिर कुछ समयके पीछे अगर यह पूर्ण विश्वासके योग्य निकलता है तो उसे गुरुदेव और भी नगीच ले लेते हैं और तब यह गुरुदेवका पुत्र कहलाने लगता है।

२२—इन तीनों कक्षाओंमें उसका सम्बन्ध केवल अपने गुरुदेवसे है न कि सारे श्वेत महामण्डलसे। इस महाम-

एडलमें तो कोई मनुष्य जब ही भरती होता है कि जब वह बड़ी दीक्षाओंमेंसे पहली दीक्षाके योग्य हो जाता है।

२३—यह महामण्डल उन महर्षियोंका है जो जगत्के अधिपति [हकमरां] हैं; इसमें भरती होना मानो मनुष्यके उन्नतिके क्रममें तीसरी बड़ी अवस्था है। इनमेंसे पहिली अवस्था वह थी जब यह मनुष्य बना अर्थात् जब यह पशु-सृष्टिमेंसे निकलकर जुदा हुआ और अहंताको प्राप्त होकर कारण शरीर पाया। दूसरी अवस्था वह है कि जिसे ईसा-इयोंके यहां "परिवर्तन" और हिन्दुओंके यहां "विवेककी प्राप्ति" और बौद्धोंके यहां "मनके द्वारोंका खुलना" कहते हैं। यह वह अवस्था है कि जब मनुष्य जीवनकी बड़ी बड़ी बातों-का अनुभव करता है और स्वार्थके कार्य्योंसे मुड़कर ईश्वरी इच्छाके अनुसार क्रमोन्नतिके बड़े प्रवाहके साथ साथ विचार-पूर्वक चलता है। तीसरी अवस्था इन सबमें बड़ी है क्योंकि जिस दीक्षासे कि वह इस महामण्डलमें भरती होता है उससे यह बात भी पक्की हो जाती है कि अब दैवी इच्छाको नियत समयमें पूरे करनेमें वह चूक नहीं सकेगा। इसलिये जो लोग इस अवस्थापर पहुंच जाते हैं वे ईसाइयोंके यहां "विशिष्ट" "रक्षित" 'निर्भय' और बौद्धोंके यहां "श्रोतापति" अर्थात् वे 'जो नदीकी धारमें प्रवेश' हो गये हैं, कहलाते हैं। क्योंकि जो लोग इस अवस्थापर पहुंच जाते हैं उनके लिये यह बात भी पूरी निश्चित हो जाती है कि वे इससे भी

ऊपरकी अवस्थापर पहुंच जायंगे अर्थात् मुक्ति अथवा महात्माके पदपर, जहांसे वे उन्नतिके उस क्रममें चले जाते हैं कि जो मनुष्यकी उन्नतिके क्रमसे परे हैं ।

२४-जो मनुष्य कि महात्मा या जीवनन्मुक्त हो जाता है वह हकारे लोककी शैलीके लिये जो ईश्वरकी नियत की हुई उन्नति है उससे पार हो जाता है । उसे अब इस कल्पके मध्यमें ही वह अवस्था प्राप्त हो गयी है कि जो कि मनुष्यको इस कल्पके अन्तमें प्राप्त होनेवाली थी । इसलिये अब जो इस कल्पका समय बचा उसे चाहे वह यहां मनुष्योंकी सहायतामें लगावे चाहे दूसरी ऊंची सृष्टियोंके दिव्यतर कार्यों में । जिस मनुष्यको अभी दीक्षा नहीं हुई है उसे हमारी सृष्टिमें पिछलकर और इसके आगेकी आनेवाली सृष्टिमें पड़ जानेका भय अभी बना हुआ है, अर्थात् यह वह दशा है कि जिसको ईसामसीहने "कल्प भरका दंड" कहा है जिसका कि उल्था भूलसे "अनंत नर्क दंड" कर लिया गया है । इस कल्पभरके लिये पिछल जानेके भयसे अर्थात् इस युगमें या इस शैलीमें या इस सर्गमें पिछल जानेके भयसे वह मनुष्य जो दीक्षा पा जाता है "अभय" हो जाता है । "वह उस धारमें पड़ जाता है" जो उसे इसी युगमें मोक्षके पद तक ले जायगी, यद्यपि यह अब भी संभव है कि वह अपने कर्मोंसे उस मार्गमें कि जिसपर चल रहा है देरी कर दे या जल्दी कर दे ।

२५—यह पहली दीक्षा प्रवेशिका (Matriculation),

की परीक्षाके समान है, जिससे मनुष्य किसी विश्वविद्यालय (Univercity) में भरती हो जाता है और मोक्षका प्राप्त होना मानो विश्वविद्यालयके क्रमके समाप्त होनेपर डिगरी (बी, ए, आदिकी उपाधि) प्राप्त करना है। इसी उपमासे इस क्रममें आदि अंतके बीचमें तीन और परीक्षाएं होती हैं जिन्हें प्रायः दूसरी तीसरी और चौथी दीक्षा कहते हैं, और इससे आगे महात्मा या ऋषि पदकी पांचवीं दीक्षा होती है। बौद्धोंकी पुस्तकोंमें उन वन्धनोंके नाम गिनाये हैं कि जो छोड़ने पड़ते हैं, उन नामोंके अर्थपर ध्यान देनेमें इस ऊंची उन्नतिके क्रमका सामान्य बोध हो सक्ता है। इन वंधनोंसे अभिप्राय उन अवगुणोंसे है कि जिन्हें मनुष्यको इस मुक्तिके मार्गमें त्याग करना पड़ता है। वे ये हैं—अनेकताका भ्रम, शंका या संशय, दंभ, विषयासक्ति, द्वेष, इसलोक या परलोकमें जीनेकी इच्छा, अभिमान, क्रोध, और अविद्या। जो महात्माके पदको पहुंच जाता है उसके शीलकी (अखलाकी) उन्नति सारी समाप्त हो जाती है, और आगे उसकी उन्नति केवल ज्ञानकी वृद्धि और अधिक चमत्कारी अध्यात्मशक्तियोंकी बढोतरीमें होती है।

अध्याय नवां

मन्वंतरोंका वृत्तांत ।

Planetary Chain.



स सृष्टि क्रममें हमारी पृथ्वी एक अङ्ग है वह हमारे सौर्य्य जगत्में अकेली नहीं है किन्तु उस जगत्में ऐसे ऐसे सब मिलाकर ग्रहोंके दस क्रम हैं जिन सबमें प्रायः एकसी अलग अलग उन्नति हो रही है। ऐसा हरएक क्रम गोलोंकी मालामें चलता है, और हरएक क्रममें गोलोंकी माल सात वार प्रलय हो हो कर प्रादुर्भाव (प्रकट) होती है। हरएक क्रममें और उसके मालके हरएक प्रादुर्भावमें विधान (तरीका) यह होता है कि यह पहले तो पंक्ति पंक्ति करके स्थूलतामें बढ़ता जाता है और जब अत्यन्त स्थूल हो चुकता है तब फिर पंक्ति पंक्ति करके सूक्ष्म होता है।

२—हरएक मालमें सात गोल होते हैं और इन गोलोंमें और मालोंमें यही नियम होता है कि पहले तो ये उतरते हुए स्थूलतामें बढ़ते (कसीफ्) होते जाते हैं, और फिर चढ़ते हुए स्थूलतासे निकलते जाते हैं अर्थात् सूक्ष्म (लतीफ्) होते जाते हैं। इसके समझानेके लिये हम उदाहरणके लिये उस मालको लेते हैं कि जिसमें हमारी पृथ्वी है। इस समय यह माल अपने चौथे अर्थात् अत्यन्त स्थूल प्रादुर्भावमें है और

इसलिये इसके सातों गोलोंमेंसे तीन गोले स्थूल हैं और दो वासनालोकके, और दो अशुद्ध मनके अणुओंके बने हुए हैं। दैवी जीवन प्रवाह (तरंग) इस मालमें एक गोलेसे दूसरे गोलेमें लगातार जाता है और यह सबसे ऊंचे अर्थात् सूक्ष्म गोलेसे चलता है और धीरे धीरे उतरकर सबसे नीचेके गोले-में आजाता है और फिर उसी दरजे तक चढ़ जाता है कि जहांसे यह चला था।

३—इन सातों गोलोंके नाम सुभीतेके लिये क्रमसे क, ख, ग, इत्यादि अक्षरोंपर और प्रादुर्भावकी गिनतीपर रक्खे गये हैं जैसे कि हमारी मालका यह चौथा प्रादुर्भाव है तो इसमें पहला गोला ४क, दूसरा ४ख, तीसरा ४ग, चौथा (अर्थात् अपनी पृथ्वी) ४ घ, इत्यादि।

४—इसमेंसे हरएक गोल स्थूल नहीं है ४ क, में मन-लोकसे नीचे कोई अणु नहीं है; और मनलोकसे ऊंचेके सब लोकोंमें इस ४ क, गोलके प्रतिरूप हैं, परन्तु मनलोकसे नीचे इसका कोई भी प्रतिरूप नहीं है। ४ख, वासनालोकमें है; परन्तु ४ ग, स्थूल है दूरबीनसे हमको दिखलाई पड़ता है और यह वही ग्रह है कि जिसको हम मंगल कहते हैं। ४ घ, का गोला यह हमारी ही पृथ्वी है जिसपर कि इस मालकी जीवनतरंग आजकल चल रही है। गोला ४ च, वह ग्रह है कि जिसको हम बुध कहते हैं और यह भी स्थूललोकमें है। गोला ४ छ, वासनालोकमें है और यह चढ़ती ओर है, और

इसके समान गोला उतरती ओरमें ४ ख, का है। गोल ४ क, की भांति गोल ४ ज, का भी सबसे नीचे अथवा सबसे गाढ़ा रूप मनलोकके नीचे भागमें है। इससें यह जान पड़ेगा कि इस मालमें क्रमसे गोले अधम मनलोकसे आरम्भ होकर वासनालोकमें होकर स्थूललोकमें उतरते हैं, और फिर चढ़ते हुए वासनालोकमें होकर अधम मनलोकमें पहुंचते हैं। (देखो नकशा)।

५.—जैसे कि एक मालमें गोलोंका क्रम पहले स्थूलमें उतरता है और फिर उससे निकलकर चढ़ता है, ठीक वैसे ही मालके प्रादुर्भावोंके क्रममें होता है। (देखो नकशामें) चौथे प्रादुर्भावका व्यवस्थाका वर्णन, तो यह हो चुका, अब तीसरे प्रादुर्भावकी ओर दृष्टि डालनेसे हमें यह दिखलाई पड़ता है कि इसका आरम्भ अधम मनलोकसे नहीं होता, किन्तु उत्तम मनलोकसे। गोले ३क, और ३ज, दोनों उत्तम लोकके अणुओंके हैं, और गोले ३ख, और ३छ, अधम मनलोक-पर हैं। गोले ३ग, ३च, वासनालोकके हैं, और अकेला एक गोला ३घ, स्थूल लोकमें है, और प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता है। हमारे मालका यह तीसरा प्रादुर्भाव बहुत काल पहले समाप्त हो चुका है, परन्तु इस स्थूल ३घ गोलेका मृतक (मुरदा) शरीर अब भी हमको दिखलाई पड़ता है जो कि हमारा मरा हुआ (मुरदा) ग्रह चन्द्रमा है और इसी कारणसे यह तीसरा प्रादुर्भाव प्रायः चन्द्रमाकी माल कहलाता है।

६—हमारी मालका पांचवां प्रादुर्भाव जिसके आनेमें अभी बहुत समय है तीसरी मालके समान होगा। उसमें ५.क, और ५.च. गोले दोनों उत्तम मनके अणुओंके बनेंगे और गोले ५.ख, और ५.छ, अधम मनके, और गोले ५.ग, और ५.च, वासना-लोकके अणुओंके बनेंगे; और अकेला एक गोला ५.घ, स्थूल लोकमें होगा। अलबत्ता यह ग्रह ५.घ, अभी बना नहीं है।

७—इस मालके और प्रादुर्भाव रहे उनमें भी यही सामान्य नियम पाया जाता है, कि स्थूलता धीरे धीरे घटती जाती है। २क, २ज, ६क, और ६ज, सब ये बुद्धिलोकमें हैं; २ख, २छ, ६ख, और ६छ, सब उत्तम मनलोकमें हैं, २ग, २च, ६ग, ६च, अधम मनलोकमें हैं; और २घ, और ६घ, वासनालोकमें हैं। इसी प्रकार १क, १ज, ७क, ७ज, आत्मिक लोकके और १ख, १छ, ७ख, ७छ, बुद्धिलोकके और १ग, १च, और ७ग, ७च, उत्तम मनलोकमें और १घ, और ७घ, अधम मनलोकमें हैं।

८—इस तरह यह मालूम होगा कि यह बात किसी एक मालके भीतर गोलोंके क्रममें ही नहीं है कि जीवनप्रवाह स्थूलमें क्रमसे उतरता है और फिर उसमेंसे निकलकर चढ़ता है, किन्तु मालके प्रादुर्भावोंके क्रममें भी ठीक ऐसा ही होता है।

९—हमारे सौर्य्यजगत्में आजकल १० सृष्टिक्रम चल रहे हैं, परन्तु उनमेंसे केवल सात ऐसी अवस्थापर हैं कि उनमेंके ग्रहोंमेंसे कोई न कोई इस स्थूल लोकमें भी है। वे

सृष्टिक्रम ये हैं–(१) वलकन नामी अपरचित ग्रहका सृष्टिक्रम जो सूर्य्यसे बहुत नगीच है, और जो तीसरे प्रादुर्भाव अर्थात् तीसरी मालमें है और इसीलिये उसमें एक ही गोला स्थूलमें दिखलाई पड़ता है; (२) शुक्रग्रहका सृष्टिक्रम, जो कि अपनी पांचवीं मालमें है, और इसीलिये जिसमें केवल एक ही गोला स्थूलमें दिखलाई पड़ता है; (३) सृष्टिक्रम, पृथ्वी, मंगल और बुधका है जिसमें तीन ग्रह दिखलाई पड़ते हैं, अर्थात् पृथ्वी मंगल और बुध, इसका कारण यह है कि यह सृष्टिक्रम चौथो मालमें है। (४) वृहस्पतिका, (५) शनिश्चरका (६) उरेनसका, जो कि तीनों अपने तीसरे मालमें हैं और (७) नैपच्यून, और बिन नामके दो और ग्रहोंका जो कि नैपच्यूनकी परिधिसे परे हैं; ये चौथी मालमें हैं, और इसलिये इसमें हमारी पृथ्वीकी तरहसे तीन स्थूल ग्रह हैं।

१०—किसी एक मालके प्रादुर्भावमें जिसको कि एक माल (एक मन्वन्तर) कहते हैं दैवी जीवनप्रवाह (तरङ्ग) उस मालके सातों ग्रहोंमें होकर सात बार घूमता है और ऐसे हरएक फेरेको आवृत्ति या परिक्रमा कहते हैं। जीवनप्रवाह किसी एक गोले अर्थात् ग्रहपर जितनी देर ठहरता है उसे ग्रह जीवनकाल कहते हैं, और इस एक ग्रह-जीवनके कालमें मनुष्योंकी सात बड़ी मूल जातियां होती हैं। जैसा कि पहले समझा चुके हैं। मूल जातियोंमें उपजातियां

और उपजातियोंमें शाखाजातियां होती हैं। सुभीतेके लिये हम इसकी नीचे लिखी हुई सारिणी (नकशा) देते हैं।

७ शाखा जातियोंकी	१ उपजाति होती है।
७ उपजातिकी	१ मूलजाति (द्वीप)
७ मूल जातियां (द्वीपों)	१ ग्रहजीवन
७ ग्रहोंकी	१ आवृत्ति (परिक्रमा)
७ आवृत्तियोंका	१ (माल) मन्वन्तर
७ मन्वन्तरोंका	१ सृष्टिक्रम
१० सृष्टिक्रमोंका	१ हमारा सौर्य्यजगत् है।

११—चौथे मन्वन्तरकी चौथी आवृत्तिके चौथे ग्रहकी चौथी मूलजाति सृष्टिक्रमके बीचोंबीच होती है, और हम अभी इस बीचके ठौरसे कुछ ही आगे बढ़ पाये हैं। हमारी आर्य-जाति चौथे ग्रहकी पांचवीं मूल जाति है, इसलिये सृष्टिक्रमका ठीक मंझ पिछली मूल जाति (अटलांटियनके समयमें) था। इसलिये सारी मनुष्य जाति अपने उन्नतिके क्रममें मंझसे कुछ ही आगे है और वे थोड़ेसे जीवात्मा जो कि महात्मापद अर्थात् इस क्रमोन्नतिकी समाप्तिके नगीच आ पहुंचे हैं वे दूसरे मनुष्योंसे बहुत ही आगे बढ़े हुए हैं।

१२—वे इतने आगे कैसे हो गये ? इसका उत्तर यही है कि कोई कोई तो केवल यों आगे हो गये कि उन्होंने श्रम अधिक किया है, और कोई कोई यों, कि और कारणोंके सिवाय उन्होंने श्रम भी अधिक किया है, परन्तु प्रायः वे पुराने

जीवात्मा हैं क्योंकि वे पशुसृष्टिमेंसे अलग होकर औरोंसे पहले मनुष्य बने, और इसलिये उन्हें मनुष्य अवस्थामें उन्नति करनेका अधिकतर समय मिल चुका है।

१३—ईश्वरसे जो कोई जीवनप्रवाह निकलता है उसे प्रायः एक एक माल अथवा मन्वंतरका समय हरएक जीव सृष्टिमें लगता है। जैसे कि वह प्रवाह जो हमारे पहले मालमें पहले भूतसर्गमें (First elemental Kingdom) था, वह दूसरी मालमें दूसरे भूतसर्ग (Second elemental Kingdom) में आया और तीसरी अर्थात् चन्द्रकी मालमें तीसरे भूतसर्ग (Third elemental Kingdom) में आया और अब इस चौथे मालमें खनिज सृष्टिमें है। आगे जो पांचवीं माल होगी उसमें यह वनस्पतिकी सृष्टिमें और छठे मालमें पशुसृष्टिमें आवेगा, और सातवीं मालमें इसे मनुष्यका दरजा प्राप्त हो जायगा।

१४—इससे यह बात निकलती है कि स्वयं हम पहली मालमें खनिज दूसरी मालमें वनस्पति, और चन्द्रमालमें पशुसृष्टिमें थे। चन्द्रमालमें हममेंसे कोई कोई मनुष्य बन गये थे और इसलिये हम मनुष्य होकर इस पृथ्वीकी मालमें आ सके थे, दूसरे लोग जो हमसे कुछ पीछे थे उन्हें मनुष्यका दरजा प्राप्त नहीं हो पाया था, इसलिये उन्हें मनुष्यका दरजा प्राप्त होनेके पहले हमारी मालमें थोड़े समयके लिये पशुओंमें पैदा होना पड़ा।

१५—परन्तु सब मनुष्य हमारी इस मालमें एक संग नहीं आये। जब चन्द्रमाल समाप्त हुई तब उसके मनुष्य एक अवस्थामें नहीं किंतु कई ऊंची नीची अवस्थाओंमें थे। इस चन्द्रमालके लिये जो अन्तिम लक्ष नियत किया हुआ था वह महात्मा या ऋषिका पद नहीं था, किंतु अपने यहांकी चौथी (अर्हतकी) दीक्षाके समान था। जो इसको प्राप्त हो गये थे वे प्रायः ब्रह्मविद्याकी पुस्तकोंमें चन्द्राधिपति कहलाते हैं, और इन्हें अधिकार था कि सेवा करनेके लिये जो सात रास्ते थे उनमेंसे चाहे कौनसा रास्ता चुन लें। इन रास्ताओंमें केवल एक ऐसा था कि जिसमें होकर वे, या यों कहो कि उनमेंसे थोड़ेसे हमारी इस पृथ्वीकी मालमें पहले पहलकी मनुष्य जातियोंके लिये रास्ता बतलाने और उपदेश करनेको आये। चन्द्रमालके बहुतसे मनुष्य (बहुत बड़ा भाग) इस दरजेपर नहीं पहुंच पाये थे, और इसलिये इन्हें हमारी पृथ्वीकी माल-पर मनुष्य होकर ही आना पड़ा था। इसके सिवाय चन्द्र-मालकी पशुसृष्टिका बहुत सा भाग मनुष्य बननेहीको था और कुछ उनमेंसे मनुष्य बन भी गये थे परन्तु बहुतसे नहीं बन पाये थे। इनको पृथ्वीकी मालपर पशुओंमें कुछ और जन्म लेनेकी जरूरत थी। परंतु हाल इनके वृत्तान्तको छोड़ देते हैं।

१६—मनुष्योंमें भी कई दरजे थे, और इस पृथ्वीकी माल-पर वे किस तरह बटे थे इसका कुछ वर्णन करना उचित होगा। ये सामान्य नियम हैं कि जो कोई किसी मालमें या

किसी ग्रहपर या किसी मूल जातिमें ऊंचेसे ऊँचे पदको पालते हैं वे दूसरी माल या ग्रह या मूल जातिमें आरंभमें ही पैदा नहीं हो जाते हैं। पहले पहलके नीचे दरजे सदा उन जीवात्माओंके लिये होते हैं जो पिछड़ जाते हैं। जब ये बहुत कुछ उन्नति कर चुकते हैं और उन दूसरोंकी कक्षाके नगीच होते हैं कि जो इनसे अच्छे थे, तब ये दूसरे जीवात्मा भी जन्म लेकर उनसे फिर मिलजाते हैं। अर्थात् ऐसा मालूम होता है कि उन्नतिके क्रमको किसी भागका चाहे वह जाति हो या ग्रह हो या माल हो प्रायः पहलेका आधा काल इस बातमें ही बिताया जाता है कि जो मनुष्य पिछल गये हैं वे इनसे श्रेष्ठतर जो मनुष्य हैं उनकी कक्षा तक लाये जावें; फिर वे श्रेष्ठतर मनुष्य भी जो कि अभीतक मनलोकमें बड़े सुखसे आराम कर रहे थे दूसरोंके साथ जन्म ले लेते हैं और फिर मालकी समाप्ति तक उनके साथ साथ चले जाते हैं।

१७—यों चन्द्रसे जो जीवात्मा पहले ही पहल हमारी पृथ्वीपर आये वे किसी रीतिसे सबसे बढ़े हुए नहीं थे। सच तो यह है कि हम यह कह सकते हैं कि वे उन सबमें जिन्होंने मनुष्यका दरजा प्राप्त कर लिया था सबसे नीचे थे अर्थात् पशु-मनुष्य थे। जब वे उस मालमें आये जिसके नये ग्रह अर्थात् गोल ताजाही ताजा बने थे उन्हें जीवकी भांत २ की सृष्टियों योनियोंमें शकलें स्थापित करनी पड़ी। यह नये मालमें पहली आवृतिके आरंभमें ही करना होता है, और उसके पीछे नहीं

होसकता है; क्योंकि जीवनप्रवाह किसी एक समयमें मालके सातों गोलोंमेंसे किसी एकमें ही मुख्यतासे इकट्ठा रहता है, यद्यपि और गोलोंमेंसे जीवन पूरा २ निकल नहीं जाता है। जैसे यह उदाहरण लीजिये कि हालमें हमारी मालमें जीवन-प्रवाह इस पृथ्वीपर इकट्ठा है, परंतु हमारे मालके दूसरे दो स्थूल गोलों मंगल और बुधमें अब भी जीवनप्रवाह बना हुआ है। उनमें अब भी मनुष्य पशु और वनस्पतिकी आबादी है और इसलिये जबकि जीवनप्रवाह फेरा करता हुआ फिर इन दोनों ग्रहोंमेंसे किसी एकमें पहुंचा तो नई शकल नहीं बनानी पड़ेगी। पुराने नमूने पहलेसे वहां हैं ही और तब केवल इतना ही करना होगा कि एक साथ चमत्कार रीतिसे वंशवृद्धि होने लग जायगी; जिससे कि भांत २ की जीवन सृष्टियां (योनियां) जल्दी २ गिनतीमें बढ़ेगी और उनमें भेद पैदा हो जांयगे और इससे आबादी स्थिर रहनेके बदले बहुत जल्दी २ बढ़ेगी।

१८—इस तरहसे चंद्रकी मालसे पशुमनुष्य अर्थात् जो सबसे नीची कक्षाके मनुष्य थे उन्होंने पृथ्वीके मालमें जाकर पहले फेरेमें शकलोंके नमूने रचे। इनसे लगते हुए पीछे चंद्रके ऊँचेसे ऊँचे पशु आये जो कि इन नये बनाये हुए शकलोंके नमूनोंमें जा बसनेको जल्द तैयार हो गये। पृथ्वीके मालके सातों गोलोंमें जो दूसरा फेरा हुआ उसमें चंद्रमाके पशुमनुष्य अर्थात् चंद्रमाके सबसे नीचे दरजेके मनुष्य इस पृथ्वीके

मनुष्यजातिके नायक (मुखिया) हुए, और पीछे चंद्रमाके ऊंचेसे ऊंचे पशुओंसे हमारी पृथ्वीके इस मनुष्यजातिमें नीचेके दरजे बने। पृथ्वीके तीसरे फेरेमें यही हाल रहा, अर्थात् चंद्रमाके बहुतसे पशु अहंता (अनानियत) प्राप्त करके मनुष्योंमें मिलते गये, यहांतक कि तीसरे फेरेके मंझ-में इस ही घ ग्रहपर जिसको कि हम पृथ्वी कहते हैं एक ऊँची कक्षाके मनुष्य अर्थात् चंद्रमाकी दूसरी कक्षाके मनुष्योंने आकर जन्म लिया और तत्काल मुखिया बन गये।

१९—जब कि चौथा अर्थात् हमारा वर्त्तमान फेरा आया तब चंद्रमाके पहले दरजेके मनुष्योंके दलके दल हमारे यहां आये। ये चंद्रमाके अच्छेसे अच्छे और उत्तमसे उत्तम कक्षाके थे जो कि थोड़ी ही कसरके कारण चंद्रमामें मुक्त होते रह गये थे। इनमेंसे कोई २ तो चंद्रमामें ही दीक्षाके पथमें प्रवेश कर चुके थे, इसलिये उन्होंने इस पथको बहुत जल्द समाप्त कर लिया और महात्मा बन गये, और पृथ्वीसे आगे चले गये। थोड़े ऐसे थे कि जो इतने बढ़े हुए नहीं थे उन्होंने भी प्रायः हालमें अर्थात् इन पिछले कई हजार वर्षोंके भीतर मुक्ति प्राप्त कर ली है, और ये ही आजकलके मुक्त पुरुष (महात्मा) हैं। हमलोग जो कि अब मनुष्योंमें ऊंची जातियोंमें हैं इन मुक्त पुरुषोंसे कई दरजे पीछेके थे परंतु यह अवसर हमें भी है कि अगर हम चाहें तो हम भी यों ही इनके पीछे पीछे जा सकते हैं।

२०—जिस क्रमोन्नतिका हम अभी वर्णन करते आये हैं वह स्वयं जीवात्माकी उन्नति है, या यों कहा जाय कि मनुष्यके जीवकी उन्नति है; परंतु साथ ही साथ शरीरकी उन्नति भी होती आई है। पहिले फेरे (चक्कर) में जो शकल बनी थीं उनमें और उन शकलोंमें जिनका कि अब हमें परिचय है बड़ा अंतर था। सच तो यह है कि जो शकलें स्थूल पृथ्वीपर पहले वनी थीं उनको हम प्रायः शकल ही नहीं कह सकते हैं, क्योंकि वे केवल प्राणमय (ईथर) अणुओंकी बनी हुई थीं और प्रायः वेडोल और चलते हुए धुमले बादलोंसे मिलती हुई होती थीं। दूसरे फेरेमें वे पूरी स्थूल हो गई परंतु फिर भी वेडोल और ऐसी हलकी थीं कि हवाके झोंकोंसे उड़ती फिरती थीं।

२१—यह बात तीसरे फेरेमें ही हुई कि मनुष्यकी आजकलकी शकलोंसे ये शकलें कुछ मिलने लगीं। आजकल जैसे, मनुष्योंके शरीरका जन्म होता है उससे उन पहले पहलके मनुष्योंके शरीरके जन्म लेनेका ढंग निराला था, और पशु वनस्पति आदि सृष्टियों (योनियों) के बहुत नीचेके दरजोंमें जो आजकल जन्म लेनेका ढङ्ग है उससे यह बहुत मिलता हुआ था। उन पहलेके दिनोंमें हर मनुष्यके शरीरमें पुरुष और स्त्री दोनोंके अंग होते थे, और पुरुष और स्त्री ठीक २ अलग तो तीसरे फेरेके बीचके लगभगसे होने लगे। तबसे अबतक बराबर मनुष्यके शरीरकी शकल आजकलके मनुष्योंके शरीरके

ढङ्गपर उन्नति करती चली आई है, अर्थात् पहलेसे बराबर छोटी और अधिक गठी हुई होती आई है, और झुककर चलने और रेंगनेके बदले सीधा खड़ा होना सीखती आई है और पशुओंके शरीरोंसे जिनमेंसे कि ये निकली थी प्रायः इसमें अंतर पड़ता चला आया है।

२२—इस क्रमोन्नतिका साधारण नियम एक बार अद्भुत रीतिसे तोड़ा गया, वह वर्णन करनेके योग्य है। अपने इस पृथ्वीपर इस चौथे फेरेमें क्रमोन्नतिकी सरल और सीधी परिपाटी एक बार उठा दी थी। यह बीचके फेरेका बीचका गोला था इस गोलेके मंझमें जब उन्नतिका प्रवाह ठीक अपने मंझपर पहुंचा तब एक बड़ा उपाय सोचा गया और एक विशेष युक्ति इस प्रयोजनसे रची गई कि जितनोंको हो सके उतनोंको एक अंतका अवसर और मिल जाय नहीं तो इस मंझके निकल जानेपर इतना विलम्ब हो जाता कि फिर चंद्रके पशुओंको अहंता अर्थात् मनुष्यपद प्राप्त होना असंभव हो जाता। यों तो यह समय पहली और दूसरी मूलजातियोंका था परंतु इनके बदले अब दुसरोंके पहले और दूसरे फेरोंकी व्यवस्था कुछ समयके लिये फिर बर्ता दी गई क्योंकि ऐसी व्यवस्थासे पहलेके फैरोंके समयमें ये उनको तीसरे फेरोंमें जो अधिक अनुभव हुआ उसके सहारेसे उनमेंसे कोई अब ऐसे लाभ उठानेके योग्य बन गये थे; इसलिये दरवाजा बंद होते २ ये सब घुस आये और निकृष्ट (अदना) दरजेके मनुष्य बन

गये। इसमें संदेह नहीं कि अपने इस मन्वंतरमें मनुष्योंके किसी ऊंचे दरजेतक ये नहीं पहुंचेंगे, परंतु इतना तो हो ही जायगा कि जब आगे किसी दूसरे मन्वंतरमें वे फिर उद्योग करेंगे तो यहांके मनुष्यपनेका थोड़ासा अनुभव भी वहां उनके काम आवेगा।

२३—हमारे पासके शुक्रके ग्रहसे हमें जो सहायता मिली इससे पृथ्वीपरकी हमारी उन्नतिमें बहुत बड़ी वृद्धि हुई, शुक्र आजकल पांचवीं माल (मन्वंतर) के सातवें फेरेमें है इसलिये उसके निवासी क्रमसे हमसे डेढ़ माल आगे हैं। यों वहांके लोग हमसे इतने अधिक उन्नत हैं, इसलिये हमारी चौथी मूल जातिके मंझमें दरवाजा बंद होनेके पहले जो कामकी भीड़ पड़ी थी उसमें सहायता करनेके लिये यह उचित समझा गया कि शुक्र ग्रहसे कुछ मुक्त पुरुष (महात्मा) पृथ्वीपर भेजे जावें।

२४—ये महात्मा ज्योतिके स्वामी ब्रह्मवर्चस (सनकादि कुमार) और अग्निके पुत्र कहलाते हैं और इनका हमारी उन्नतिपर अद्भुत प्रभाव पड़ा है। हमारी तर्कशक्ति (अक़्ल) जिसका कि हमें इतना अभिमान है वह केवल इन्हींके सत्सं-गके प्रतापसे है, क्योंकि सामान्य क्रमसे तो आगे आनेवाला अर्थात् पांचवां फेरा तर्कशक्तिकी उन्नतिका होना चाहिये था, और हमारे इस चौथे फेरेमें तो हमें मुख्य करके अपनी काम क्रोधादि वासनाओंके सुधारमें लगे हुए होना चाहिये था।

इसलिये जो क्रम कि हमारे लिये पहले बनाया गया था उससे असलमें हम बहुत आगे बढ़े हुए हैं; और यह केवल इन बड़े महात्माओंकी सहायताका प्रताप है। इन महात्माओंमेंसे बहुत-से केवल हमारे उस भीड़के समय तक ही हमारे साथ रहे, परंतु उनमेंसे थोड़ेसे बृहत् श्वेत महामण्डलमें बड़े २ कामों-पर अब भी हैं और जबतक कि हममेंसे मनुष्य उन्नति करके इन महात्माओंका काम सम्हालनेके योग्य न हो जायं तबतक ये महात्मा वहां बने रहेंगे।

२५—अब भी जो हमारी उन्नति होनेवाली है वह जीव और शरीर दोनोंकी है, क्योंकि आगेके फेरोंमें जीवात्मा भी बराबर बल बुद्धि और प्रेममें बढ़ेंगे और स्थूलशरीर भी इतने अधिक सुंदर और उत्तम होंगे कि पहले कभी नहीं हुए थे। आजकल इस संसारमें मनुष्योंकी उन्नतिके दरजोंमें बहुत बड़े २ अंतर हैं, और यह चौड़े है कि दलके दल जंगली लोगोंके हैं जो कि पृथ्वीकी बड़ी सभ्यजातिके मनुष्योंसे बहुत पीछे हैं, और सच तो यह है कि वे इतने पीछे हैं कि अब बढ़कर इनके बराबर कभी नहीं आ सकेंगे। हमारे उन्नतिके क्रममें कुछ आगे चलकर एक ऐसा समय आ जावेगा कि जहांसे आगे वे नीची कक्षाके जीवात्मा दूसरोंके साथ नहीं चल सकेंगे और तब इनको छांटना पड़ेगा।

२६—मदरसेमें उस्ताद जैसे कि अपने दरजेमेंसे लड़कोंको छांट देता है ठीक वैसी ही यह क्रिया है। उस्तादको मदरसेमें

वर्ष भरमें अपने लड़कोंको किसी परीक्षाके लिए तय्यार करना पड़ता है, और प्रायः छः माहमें उसे भलीभाँत यह जान पड़ जाता है कि उनमेंसे कौन २ लड़के परीक्षामें ठीक निकलेंगे। अगर उसके दरजेमें कोई ऐसे लड़के हों जो औरोंसे इतने पीछे हों कि उनके ठीक निकलनेकी आशा नहीं रही हो तो उसका उनसे छः माहीपर यह कहना अनुचित न होगा कि "तुम्हारा अपने दरजेवालोंके साथ रहना तुम्हारे लिये निरा व्यर्थ है; क्योंकि अब जो अधिक कठिन बातें पढ़ाई जावेंगी वे तुमको कुछ भी समझमें नहीं आवेंगी और यह हो नहीं सक्ता है कि अब आगे इस थोड़े समयमें तुम इतना सीख सको, कि परीक्षामें ठीक निकल जाओ; इसलिये अब साहस करनेमें तुमको केवल वृथा परिश्रम होगा, और दरजेमें तुम्हारे कारण दूसरोंको अड़चन होगी। इसलिये तुमारे लिये यह बहुत अच्छा होगा कि अन होनी बात करनेका साहस छोड़ो, और नीचेके दरजेका काम जिस्में तुम अधूरे थे अब फिर करने लग जाओ और अगली सालके दरजेके साथ इस परीक्षामें शामिल हो जाना, क्योंकि जो बात अभी तुम्हारे लिये असंभव है वह तब सहल हो जायगी"।

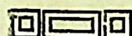
२७—हमारे आगेकी उन्नतिके क्रममें एक समय आता है कि जब उन जीवात्माओंसे जो बहुत ही पिछल गये हों ठीक ऐसी ही बात कही जाती है। वे इस वर्षके दरजेसे फट जाते हैं और दूसरे वर्षके दरजेके साथ होकर फिर आगे आ

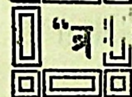
जाते हैं। यही "कल्प भरका नर्क" है, जिसका कुछ वर्णन पहले हो चुका है। हिसाब लगानेसे यह बात निकली है कि सब मिलाकर सौ २ मनुष्योंमेंसे चालीस २ इस तरहसे दर-जेसे छुट जावेंगे और सौ २ मेंसे साठ २ रहे वे सब ही जल्द २ उन्नति करके उस उत्तम पदपर पहुँच जावेंगे जो कि उनके लिये थामा गया है।



अध्याय दसवां

ब्रह्मविद्याके अभ्यासका फल ।





"ब्रह्मविद्यासभाके सभासद इन सिद्धान्तोंका पढ़ते हैं और ब्रह्मज्ञानी उनपर चलनेका उद्योग करते हैं" तो सच्चा ब्रह्मज्ञानी इस ज्ञानसे किस किस्मका मनुष्य बन जाता है ? और उसके दिन रातके जीवनमें इस अभ्यासका क्या फल होता है ?

२—यह बात जानकर कि सबके ऊपर एक ऐसी शक्ति है जो कि उन्नतिके क्रमको चला रही है और यह कि वह सर्वज्ञ और सबका हितकारी है, ब्रह्मज्ञानी मनुष्यको यह दिखाई देता है कि इस सृष्टिक्रममें जो कुछ है वह इसकी उन्नतिके बढ़ानेके लिये ही है। उसे यह भी अनुभव हो जाता है कि धर्मपुस्तकोंमें जो लिखा है कि सब बातें भलाईके लिये ही हो रही हैं यह केवल कवियों (शायरों) की चपल कल्पना या श्रद्धालु भक्तोंकी आशा ही नहीं है किन्तु एक सच्ची प्रत्यक्ष प्रमाणकी बात है। यह निस्सन्देह निश्चित है कि हरएक मनुष्यकी वर्तमान व्यवस्था चाहे कैसी ही हो अन्तमें उसे ऐसा उत्तम पद मिलेगा कि जिसका वर्णन भी नहीं हो सक्ता है। इतना ही नहीं, किन्तु यह भी निश्चय है कि यहां और

इस क्षणमें भी वह उस पदकी ओर बढ रहा है, और जो कुछ कि भली बुरी उसपर बीतती है, असलमें अगर देखा जाय तो वह सब, उसको सहायता देनेके लिये है न कि उसको रोकनेको। यह बात निस्सन्देह चिंताकी है कि संसारमें बुराई, शोक, और दुःख बहुत है, परन्तु ऊंची दृष्टिसे देखनेसे ब्रह्मज्ञानीको यह दिखलाई पड़ जाता है कि चाहे कैसी ही भयानक क्यों न हों ये बातें हैं केवल थोड़े दिनोंकी, और ऊपरी, और ये सब उन्नतिके लिये ही काममें लाई जा रही हैं।

३—जब कि अपने अज्ञानके दिनोंमें वह इन बातोंको अपनी अज्ञानकी दृष्टिसे देखता था तब उसको ऐसा दिखलाई पड़ना असम्भव था। जबतक किसी ऐसी बातपर जो बुराई सी जान पड़ती थी आंख जमाकर इस संसारकी बाहरी बातोंको वह नीचेसे देखता था तबतक वह उसके असली भेद नहीं समझ सक्ता था। परन्तु अब वह अपने विचार और चैतन ऊंचेपर लेजाकर ऊपरसे अपनी भीतरी या आत्माकी आँखसे संसारको देखता है और उसका भेद पूरा समझ लेता है, इसलिये उसे यह दिखाई पड़ने लग गया है कि जो कुछ हो रहा है सब असलमें भलाई ही है, और यह नहीं कि यह भलाई आगे किसी बहुत बड़े समयके बीतनेपर होगी किन्तु यह कि अब भी इस छिनमें और इस सब निरंतर कलह और दिखावेकी बुराईके बीचमें भी उन्नतिकी प्रबल धारा बराबर बह रही है और इसलिये यह सब अच्छा ही हो रहा

है क्योंकि यह सब उत्तम प्रबन्धके साथ आगेको अंतिम लक्षकी ओर बढ़ता जा रहा है।

४—ब्रह्मज्ञानी यों अपने चेतनको संसारके झगड़ों टंटोंसे ऊँचा ले जाता है और जो बात उसे पहले बुराई सी दर्सती थी उसके भेदको पहचानने लगता है, और यह भी देख लेता है कि उन्नतिकी बड़ी धारसे उलटी यह पीछेको दबाती हुई क्यों जान पड़ती है। उसे यह भी दिखाई पड़ने लगता है कि उन्नतिके दैवी नियमकी बाढ़के सामने यह ऊपरी बुराई ऐसी ही तुच्छ है जैसी कि नियागरा नदीके प्रचंड प्रवाहके सामने उसके पानीके ऊपरके झाग। यों हर एकके दुःखमें उसे गाढ़ा दुःख होता है परंतु यह मनमें यह जानता है कि इस दुःखका परिणाम क्या होगा, और इसलिये वह निरास कभी नहीं होता। वह संसारके और ऐसे ही अपने शोक और दुःखपर इसी प्रकार विचार करता है और इसलिये उसके ब्रह्मज्ञानका एक बड़ा फल यह होता है कि उसे पूरी शान्ति रहती है, इतना ही नहीं किन्तु इससे अधिक यह कि उसे सदा प्रसन्नता और सुख रहता है।

५—ब्रह्मज्ञानीको चिन्ता तो होती ही नहीं, क्योंकि वह यह जान लेता है कि सब अच्छा ही होगा और इसलिये असलमें चिन्ता करनेकी कोई बात ही नहीं रहती। उसकी यह ऊंची विद्या उसे पक्का साहसी और हिम्मतवाला बना देती है, क्योंकि वह उसे एक ओर तो यह दिखला देती

है कि जो कुछ बुराई किसी मनुष्य या किसी काममें हो वह केवल थोड़े दिनोंकी है, क्योंकि बुराई उन्नतिके अटल धारके विरुद्ध होती है; और दूसरी ओर उसे यह दिखला देती है कि जो कुछ भलाई किसी मनुष्य या किसी काममें है वह स्थायी और लाभदायक है। क्योंकि उस भलाईकी पीठपर सर्वशक्तिमान् प्रवाहकी सहायता है और इसलिये वह सदा स्थिर रहेगी और सबपर प्रवल रहेगी।

६—अन्तमें भलाईकी जय होनेका ऐसा पूरा विश्वास होनेसे यह एक क्षणके लिये भी नहीं मान लेना चाहिये कि संसारमें जो बुराइयां उसके चारों ओर होती हैं उनसे ब्रह्मज्ञानी बे परवाह या रूखा बना रहता है। वह जानता है कि उसका यह कर्तव्य है कि अपने बस भर वह इन बुराइयोंको रोके, क्योंकि ऐसा करना सृष्टिक्रमकी बड़ी शक्तिकी सहायता करना और उसकी अन्तिम जयके समयको नगीच लाना है। भलाईके काम करनेमें कोई भी उससे अधिक पुरुषार्थी नहीं हो सकता है, यद्यपि दूसरोंकी सहायता करनेमें जो लोगोंके मनमें प्रायः निर्बलता और निरासकी भावनासे बाधा होती है वह उसमें सर्वथा नहीं होती।

७—एक और बहुत बड़ा फल ब्रह्मविद्याके अभ्यासका यह होता है कि भय नहीं रहता है। बहुतसे लोगोंको सदा किसी न किसी बातका सोच या फिकर लगा रहता है, उन्हें यह डर लगा रहता है कि उनके कहीं यह न हो जाय, वह

न हो जाय, या यह कि यह मेल या वह मेल टूट न जाय और इसलिये वे सदा बेचैन बने रहते हैं; और सबसे अधिक तो बहुतोंको मौतका भय होता है। ब्रह्मज्ञानीके मनसे यह डर निर्मूल हो जाता है। उसे पुनर्जन्मके बड़े सिद्धान्तका अनुभव हो जाता है। वह जान जाता है कि वह पहले कई बार स्थूल शरीरोंको छोड़ चुका है और इसलिये उसे यह जान पड़ता है कि मौत नींदसे कुछ भी अधिक नहीं है, अर्थात् यह कि जैसे नींद हमारे कामके दिनोंके बीचमें आया करती है और हमको आराम और ताजगी दिया करती है, वैसे ही हमारे पृथ्वीपर शरीरके दिनोंके बीच अर्थात् हमारे जन्मोंके बीच २ में वासना लोक और स्वर्गकी अवस्थाकी एक बड़ी रात हमको आराम और ताजगी देनेको, और हमारी उन्नतिमें सहारा लगानेको आया करती है।

८—ब्रह्मज्ञानीको तो मौत केवल थोड़े दिनके लिये इस हाड़ मांसके कपड़ेका उतार डालना है; वह यह जानता है कि उसका यह धर्म है कि जहांतक हो सके इस शरीररूपी वस्त्रको बनाये रक्खे, और उसमें होकर जितना हो सके उतना अनुभव करे; परंतु जब उसके उतार डालनेका समय आ जाय तब वह धन्यवाद देकर उसे त्याग देता है, क्योंकि वह जानता है, कि इससे आगेका दरजा इससे अधिक सुखका होगा। यों उसे मौतका कोई डर नहीं होगा; यद्यपि उसे निश्चय है कि उसे नियत समयतक जीना होगा, क्योंकि

उसका यहां आना केवल उन्नतिके लिये है, और उन्नति ही उसके लिये असलमें मुख्य बात है। उसके मनमें जीनेका प्रयोजन ही निराला है; उसका मनोरथ यह नहीं है कि इतना रुपया कमा लिया जाय और न यह है कि ऐसे ऐसे अधिकार मिल जावे; उसके लिये सबसे बड़ी बात यह है कि दैवी इच्छाको यह पूरा करे। वह जानता है कि इसीके लिये वह यहांपर आया है और इस प्रयोजनके आगे और सब बातें टाल देनी होगी।

९—मत मतांतरोंमें जो डरावनी बातें चिंता और कष्टोंकी हैं उनकी इसे कुछ भी शंका नहीं रहती। ऐसी बातोंसे तो उसका छुटकारा हो गया है, क्योंकि उसे अच्छी तरहसे मालूम हो गया है कि परमेश्वरकी इच्छा है कि हम परम पदकी ओर उन्नति करते जांय और यह अमिट है और जो कुछ हमारे आगे आता है और जो कुछ हमपर बीतता है, वह सब इस उन्नतिके मार्गपर हमें बढ़ानेके लिये है; और यह कि हमारी उन्नतिमें अगर कोई देरी हो सक्ती है तो हमारे ही हाथोंसे। अब उसे अपने आपके लिये कोई फ़िकर या डर नहीं रहा है। वह केवल अपने शरीरका निर्वाह करता है और जो कुछ काम उसके आगे आ जाता है उसे अच्छीसे अच्छी तरह करता है, क्योंकि उसे यह विश्वास रहता है कि अगर वह इतना करता जाय तो उसका बिना किसी फ़िकरके अपने आप ही भला हो रहेगा। उसे इतनेमेंही संतोष होता है कि वह अपना काम

और अपने साथियोंकी मदद चुपचाप करता जाय, क्योंकि उसे मालूम है कि जहांतक कि वह अपना मूंह ठीक दिशाकी ओर किये रहेगा, और जहांतक कि करनेका काम वह बूतेभर करता रहेगा, वहांतक बड़ी दैवीशक्ति पीछेसे धीरे २ उसे आगेको बराबर दबाती रहेगी और जो कुछ कि हो सकता है बराबर उसके लिये करती रहेगी।

१०—उसे यह मालूम है कि हम सब एक बड़े सृष्टिक्रमके अंग हैं और सचमुच एक ही पिताके लड़केवाले हैं, और इसलिये उसे यह दिखलाई पड़ता है कि मनुष्योंका एक दूसरेका भाई होना कोरी कवियोंकी कल्पना नहीं है, किन्तु एक निश्चित और सच्ची बात है, अथवा यह केवल किस्से कहानीकी तरह एक अत्यंत ऊंचे लक्षका स्वप्न नहीं है किन्तु एक सच्ची व्यवस्था है जोकि अभी और यहां ही वर्त्त रही है। इस बातके निश्चित होनेसे सब भाई भाई हैं उसके विचारमें बहुत उदारता आ जाती है और वह हरएक बातको परमार्थकी दृष्टिसे देखने लग जाता है। उसे यह अनुभव हो जाता है कि सबकी भलाईमें ही हरएक-की सच्ची भलाई है, और दूसरोंको हानि या दुःख पहुंचाकर-किसीका सच्चा लाभ कभी नहीं हो सकता है। यह बात वह केवल श्रद्धासे ही नहीं मानता है किंतु अभ्याससे सिद्ध होकर यह उसको प्रत्यक्ष प्रमाण हो गया है। उसे यह दिखलाई पड़ता है कि मनुष्य मात्रमें सचमुच एकता है, इसलिये

किसी एकके बिगाड़में किसी दूसरेकी भलाई कभी नहीं हो सकती, क्योंकि इसका असर केवल बिगाड़ करनेवालेपर ही नहीं पड़ता है किंतु उसके आस पास वालोंपर भी।

११—वह यह जानता है कि उसकी सच्ची भलाई उसी लाभमें होती है जिसमें वह सबको शामिल कर ले। वह देखता है कि जो कुछ अध्यात्मिक उन्नति या वृद्धि उसने की है उसका लाभ केवल उसके ही लिये नहीं है किन्तु औरोंके लिये भी। अगर वह ज्ञान प्राप्त कर लेता है या (आत्मसंयम) मन वशमें कर लेता है, तो इससे निस्संदेह उसकी बड़ी कमाई होती है; परन्तु इसमें दूसरोंसे वह कुछ ले नहीं लेता है, किन्तु उनको इससे सहायता और बल पहुंचता है। उसे यह तो मालूम ही है कि मनुष्य मात्रमें अध्यात्मिक एकता है, इसलिये वह जानता है कि इस नीचेके लोकमें भी किसीके लिये कोई बात सच्ची लाभकी जब ही हो सकती है जब कि वह सबके लिये की जाय और उसमें सबका हित हो। वह यह भी जानता है कि किसी एक मनुष्यकी वृद्धि वह ही है जिससे सब दूसरोंके कंधेका बोझ हलका हो, और यह कि अगर कोई मनुष्य अध्यात्मिक (परमार्थ) की उन्नति करे तो उससे मनुष्य मात्रकी थोड़ीसी परन्तु प्रत्यक्ष उन्नति हो ही जाती है; और यह कि जो कोई अपने अध्यात्मिक तपमें सोच और कष्ट वीरता (बहादुरी) से सहता है वह अपने भाइयोंके सोच और कष्टके भारी बोझेको भी कुछ न कुछ हलका कर रहा है।

१२—इस भाईपनेके भावको वह केवल ऐसे नहीं मानता है कि जैसे निरास होकर लोग आशाको अमरधन समझने लगते हैं किन्तु वह उसे एक सच्ची बात समझता है जिसका प्रमाण दूसरी सत्य बातोंसे, विज्ञानकी रीतिसे (निश्चयके साथ) सिद्ध होता है; और वह इसे निरन्तर सत्य भी जानता है, इसलिये उसका अपने आस पासके लोगोंके साथ वर्ताव करनेका भाव सम्पूर्ण बदल जाता है। इससे उसका स्वभाव निरंतर उपकारी और गहरी सहानुभूतिका बन जाता है, क्योंकि वह देखता है कि जो कुछ उसके आस पासके लोगोंके परमार्थकी भलाईके विरुद्ध हो वह उसके लिये न तो उचित है और न किसी तरह लाभ देनेवाला है।

१३—इससे यह बात सहज निकलती है कि उसमें सहनशीलता और क्षमा बहुत ही आ जाती है। वह सदा सहनशील ही रहता है क्योंकि उसके सिद्धान्तोंसे उसे यह दिखलाई पड़ जाता है कि जहांतक कोई मनुष्य भला और सच्चा हो वहांतक यह बड़ी चिंताकी बात नहीं है कि वह किस मतका माननेवाला है। वह क्षमा भी सदा रखता है क्योंकि उसका ज्ञान अधिक विस्तारका होता है, इसलिये बहुतसी बातोंको जिन्हें साधारण लोग नहीं समझ सकते हैं यह क्षमा कर देता है। पुण्य और पापका लक्ष्य कम पढ़े लोगोंसे ब्रह्मज्ञानीका सदा ऊंचा होता है, परंतु पापीकी ओर इसका भाव बहुत नर्मीका होता है, मनुष्यकी प्रकृतिका भेद यह अधिक

समझा हुआ है। इसे मालूम है कि पाप करते समय पापीको पाप कैसा लगा था और इसलिये जितनी क्षमा कि अज्ञानी मनुष्य कर सकता है उससे यह अधिक करता है।

१४—वह सहनशीलता, क्षमा और सहानुभूतिसे भी आगे जाता है; उसे मनुष्य मात्रसे सहज प्रेम होता है, और इसलिये वह उपकारी भाव बनाये रहता है। वह यह समझता है कि दूसरोंसे मिलनेके जो संसर्ग उसे होते हैं वे सबके सब उसके लिये अलग २ अवसर होते हैं, और जो पढ़ते २ उसे अधिक ज्ञान प्राप्त हो गया है उससे उसे ऐसी योग्यता हो गई है कि चाहे कोई विषय (मामला) उसके आगे आवे उसमें वह सलाह या मदद दे सकता है। यह बात नहीं है कि वह दूसरोंके बीचमें अपने आप सदा सलाह देनेको पड़ता फिरेगा। उलटा उसे यह अनुभव रहता है कि यह भूल बिना पढ़े लोगों-ही प्रायः हो जाया करती है। वह यह भी जानता है कि वाद विवाद करना मनकी शक्तिको व्यर्थ गमाना है, इसलिये वह विवाद करनेसे इनकार कर देता है। अगर कोई उससे किसी बातकी व्यवस्था या कोई सलाह पूछता है तो वह इसके लिये पूरा तय्यार रहता है, परंतु उसे यह इच्छा नहीं होती है कि वह किसीको उसके मत या विचारसे निकाल कर अपनेमें लावे।

१५—संसारके हर व्यवहारमें यह सेवाका भाव मनुष्योंके साथ ही नहीं किंतु उसके आस पासके पशुओंकी बड़ी सृष्टिके

साथ भी काममें आता है। पशुओंमेंसे कोई कोईका मनुष्यसे घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाता है, और यह ही उसको उनके लिये कुछ न कुछ करनेका अवसर बन जाता है। ब्रह्मज्ञानी यह बात जानता है कि यह भी उसके भाई हैं चाहे छोटे ही क्यों न हों और इसलिये उसपर उनका भी भाईपनेका भार होता है, और वह यह है कि वह ऐसे विचार और काम करे जिससे कि उसके सम्बन्धसे उनका सदा भला हो और हानि कभी नहीं होने पावे।

१६—विशेषकर और सबसे ऊपर उसकी ब्रह्मविद्या उसके लिये एक ऐसा मार्ग है कि जिसका आधार साधारण बुद्धिपर है। यह उसको जहांतक वह अभी समझ सक्ता है यह बतलाती है कि परमेश्वर और मनुष्य क्या है और उनके आपसमें क्या सम्बन्ध है; तब ब्रह्मज्ञानी इन बातोंपर ध्यान देने लगता है और इनपर साधारण बुद्धिके साथ चलने लगता है। वह अपना रहनगतको सृष्टिके उन नियमोंके अनुकूल कर लेता है जो कि ब्रह्मविद्यासे उसने सीखे हैं और इससे उसे नई बातें (लक्ष) दिखलाई पड़ने लगती हैं, और एक कसौटी मिल जाती है कि जिससे वह हरएक बातकी जांच कर सकता है अर्थात् जिससे वह सबसे पहले तो अपने ही विचारों, वासनाओं, और कर्मोंकी, और फिर उन बातोंकी जांच कर सक्ता है जो कि संसारमें बाहरसे उसके आगे आती हैं।

१७—वह जांच सदा इस तरह किया करता है कि क्या यह बात भली है या बुरी, क्या इससे सृष्टिकी उन्नतिमें सहायता मिलती है या रोक होती है। अगर कोई विचार या वासना उसके भीतर उठती है तो इस विधिसे जांच कर, वह देख लेता है कि उसको बढ़ाना चाहिये या नहीं, अगर वह विचार या वासना अधिकसे अधिक लोगोंकी अधिकसे अधिक भलाईके लिये हो तब तो वह ठीक है, परंतु अगर उससे किसीकी उन्नतिमें रोक या हानि होती हो तो वह बुरा है और उससे बचना चाहिये। अगर उसे किसी दूसरेकी किसी बातकी जांच करनी हो तो भी ठीक यही विधि काममें लाई जाती है। अगर इस विधिकी जांचसे कोई बात भलाईकी पाई जावे तो वह अंतःकरणसे उसको पुष्ट करता है नहीं तो उससे वह कुछ काम नहीं रखता।

१८—स्वार्थका विचार उसको किसी मामलेमें नहीं आता। वह तो केवल सम्पूर्ण सृष्टिकी उन्नतिका विचार करता है। इससे उसको एक निश्चित आधार और साफ २ जांचकी विधि हाथ लग जाती है, और फिर उसे सन्देह या दुविधाकी बाधा नहीं रहती है। परमेश्वरका अभिप्राय यह है कि मनुष्यकी उन्नति हो, इसलिये जिस किसी बातसे इसकी वृद्धि हो वह ही अच्छी और जिस किसीसे इसमें रोक या देरी हो वह ही बुराई है, चाहे कितना ही प्राचीन सदाचार और लोकमतका सहारा उसकी ओर हो।

१९—वह जानता है कि असली मनुष्य जीवात्मा है, न कि शरीर, इसलिये उसे यह दिखलाई पड़ता है कि जीवात्माका जीवन ही बड़ी बात है और यह कि शरीरकी सब बातोंको निस्संदेह जीवात्माके ऊंचे विषयोंके आधीन कर देना चाहिये। उसे यह अनुभव हो जाता है कि यह स्थूल जान उसे उन्नतिके लिये ही दी गई है और इसलिये यह उन्नति ही एक सर्वोपर बड़ी बात है। जीनेका असली अभिप्राय यह है कि जीवात्माकी शक्तियां उभारी जायँ और सुभावकी उन्नति की जाय। वह जानता है कि विकाश स्थूल शरीरका ही नहीं होना है किन्तु मानसिक सुभावका, और मनका, और अध्यात्मिक शक्तियोंका भी। वह देखता है कि उन्नतिमें उससे यह आशा की जाती है कि वह संपूर्ण सम्पन्नता ही प्राप्त करेगा, और यह कि यह सब उसीके हाथमें है, और यह कि उस सम्पन्नताके प्राप्त करनेको अनन्त समय पड़ा हुआ है, परन्तु जितनी जल्दी प्राप्त हो जायगी उतना ही अधिक उसका आनन्द और उपकार होगा।

२०—वह यह जानता है कि उसका जीवन केवल मदरसेके एक दिनकी तरह है और यह स्थूल शरीर केवल एक थोड़े दिनका वस्त्र है जो कि इसलिये पहना गया है, कि उसमें होकर विद्या सीखी जाय। उसे यह तत्काल मालूम हो जाता है कि यह विद्या सीखनेका अभिप्राय ही एक सचमुच बड़ी बात है, और यह कि जो कोई इस अभिप्रायसे किसी कारणसे

टल जाता है वह अत्यन्त मूर्खता करता है। उसकी दृष्टिमें जीनेको निरा स्थूल वस्तुओंमें और धन या नामवरी कमानेमें लगाना केवल बच्चोंका सा खेल लगता है, अर्थात् उसे यह लगता है कि इन्द्रियोंके पलभरके सुखके लिये उन सब असली बढ़िया बातोंका छोड़ देना एक बड़ी मूर्खताका काम है। वह तो "अपने मनको ऊपरकी वस्तुओंमें लगाता है न कि पृथ्वीकी वस्तुओंमें" और उसका कारण यह ही नहीं है कि यह उसको उचित दिखलाई पड़ता है किंतु यह भी है कि ये पृथ्वीकी वस्तुएं उसे चौड़े ही तुच्छ लगती हैं। वह सदा ऊंचे लक्षकी ओर देखनेका उपाय करता है क्योंकि वह यह जानता है कि नीचेका लक्ष्य किसी तरह प्रतीतके योग्य नहीं है, और नीचेकी कामनाए और वासनाएं गहरे कुहरकी नांई उसे घेर लेती हैं और उसकी दृष्टि धुमली कर देती हैं।

२१—जब कभी उसके मनमें दुविधा खड़ी होती है तो वह यह याद कर लेता है कि मैं तो ऊंचा हूं और जो यह नीचा है वह असली आत्मा नहीं है किंतु मेरे शरीरोंमेंसे एक शरीरका ऐसा अंग है जो वशमें नहीं हो पाया है। वह यह जानता है कि अपने लक्ष्यके मार्गमें चाहे वह हजार बार गिर पड़े तो भी उसका उत्साह लक्षपर पहुंचनेका हजार बार गिरनेपर भी उतना ही बना रहेगा जितना कि आरम्भमें था, इसलिये निरास होना केवल निरर्थक ही नहीं, किन्तु उसमें मूर्खता और बुराई भी होती है।

२२—वह उन्नतिके रास्तेपर चलना तुरन्त आरम्भ कर देता है, और यह इसलिये नहीं कि वह जानता है कि देरमें आरम्भ करनेसे अभी आरम्भ कर देना बहुत सहल होगा किंतु मुख्यकर इसलिये कि अगर वह अभी उपाय करके कुछ उन्नति कर लेगा और यों कुछ ऊंचे दरजेपर चढ़ जायगा तो उसे उन लोगोंको सहायता देनेकी सामर्थ्य हो जायगी जो उस दरजेपर भी अभी नहीं पहुंच पाये जिसपर यह पहुंच गया है। इस प्रकार उन्नतिकी बड़ी दैवी क्रियामें वह भी काम करने लग जाता है, चाहे वह काम कितना ही तुच्छ हो।

२३—वह जानता है कि वह धीरे धीरे बढ़कर ही अपनी वर्त्तमान अवस्थापर पहुंचा है, और इसलिये वह यह नहीं आशा करता है कि उसे क्षणभरमें ही पूर्णता प्राप्त हो जायगी। वह देखता है कि कर्म और कर्मफलका बड़ा नियम कैसा अटल है, और यह कि जब वह एकबार इस नियमकी विधिको समझ लेगा तो वह अपने मन और आचरणकी उन्नतिमें उस नियमको बुद्धिपूर्वक काममें ला सकेगा, ठीक जैसे कि स्थूल लोकमें हम अपने काममें प्रकृतिके उन नियमोंको लाते हैं जिनकी विधि हम समझ गये हैं।

२४—यह समझकर कि मौत क्या वस्तु है उसे यह मालूम हो जाता है कि उसमें डरने या चिंता करनेकी कोई बात नहीं है, चाहे मौत उसे अपने आपको आवे चाहे उसके प्रीतिवालोंको। मौत उन सबको पहले कई बार आ चुकी

है इसलिये उसमें कोई विलक्षण बात नहीं है। वह तो मौतको केवल यों समझता है कि यह ऐसे जीनेकी अवस्थासे जो आधीसे अधिक स्थूल हो बहुत बढ़िया अवस्थामें चढ़कर जाना है, इसलिये अपने लिये वह मौतका सच्चे दिलसे स्वागत करता है; और जब मौत उसके प्रीतिवालोंको आता है तब भी वह जानता है कि इसमें उनका लाभ है, यद्यपि उसको स्थूल लोकमें थोड़े दिनके लिये उनसे जुदा होनेका खेद हुए बिना नहीं रहता। परंतु वह यह जानता है कि जिनको हम मरे हुए समझते हैं वे अब भी उसके पास ही हैं, और पहलेकी नांई उनके साथ होनेके लिये उसे केवल थोड़ी देरके लिये उसे अपने स्थूल शरीरको नींदमें छोड़ना पड़ता है।

५—उसे यह साफ़ दिखलाई पड़ता है कि संसार एक ही है और यह कि सारा संसार चाहे वह दृश्य हो चाहे अदृश्य, एक ही दैवी नियमके आधीन है। इसलिये संसारके एक हिस्सेसे दुसरे हिस्सेमें जाकर उसे न तो घबराहट होती है और न अनोखापन लगता है और न उसे इस बातकी शंका होती है कि परदेके दूसरी ओर उसे क्या मिलेगा। वह यह जानता है कि उस ऊंचे जीवन अवस्थामें नई २ विद्या सीखनेके लिये और उपकार करनेके लिये उत्तम उत्तम अवसर मिलेंगे; और इस स्थूल शरीरके छोड़नेपर जीवन अवस्था ऐसी निर्मल और तेजवाली होती है कि उसके आगे पृथ्वीके सारे भोग कुछ भी नहीं हैं; और यों उसके निर्मल ज्ञान और शाँति

और श्रद्धामें होकर अनंत जीवनकी शक्तिका प्रकाश उसके आस पासके सब लोगोंपर पड़ता है।

२६—आगे उसका क्या होनहार है? इसकी उसको कोई शंका नहीं उठ सक्ती है क्योंकि ठीक जैसे कि पीछेको जंगली मनुष्योंकी ओर देखकर वह जान जाता है कि मैं पहिले क्या था ऐसे ही सबसे बड़े और बुद्धिमान मनुष्योंकी ओर देखकर वह जान लेता है कि मैं आगे क्या बन जाऊंगा। वह देखता है कि उन्नतिकी एक अखंडित सांकल है या एक सरणी उसके सामने खड़ी है जो परम पदतक चली गई है और जिसके हरएक डंडेपर मनुष्य बैठे हैं; इससे वह जानता है कि वह भी इन डंडोंपर चढ़ सकेगा। कर्म और कर्म फलके बड़े नियमकी स्थिरतापर ही भरोसा रखकर उसे इस सैनीपर चढ़नेका साहस होता है क्योंकि नियम सदा एकसा चलता है और इसपर भरोसा हो सक्ता है और वह इसे काममें ठीक वैसे ही ला सक्ता है जैसे कि स्थूल लोकके प्रकृतिके नियमोंको। इस नियमके जान लेनेसे उसे असली बातके अनुभव करनेकी सामर्थ्य हो जाती है, और उसे यह मालूम पड़ जाता है कि अगर कोई बात उसपर बीतती है तो इसका कारण यह ही होता है कि वह उसका अधिकारी है और वह उसके इस जन्म या और जन्मोंके पहले कर्म, वचन या विचारोंका फल है। वह समझता है कि क्लेशका भुगत लेना मानों ऋणका चुकाना है, इसलिये जब उसे संसारमें दुःख होता है तब वह

उसे स्वीकार करता है, और उससे शिक्षा भी ले लेता है, क्योंकि वह यह समझ लेता है कि ये दुःख क्यों आये हैं और उसे यह प्रसन्नता होती है कि इस दुःखसे उसे अपने भारके थोड़े बहुत उतारनेका यह अवसर मिला है।

२७—इसके सिवाय वह एक और तरहसे भी दुःखोंका आना एक अच्छा अवसर (मौका) समझता है; क्योंकि वह जानता है कि अगर वह इनको चतुराईसे झेले तो इनसे और भांतका भी लाभ होता है। वह आनेवाले भारके सहनेमें पहलेसे ही समय नहीं खोता है और जब दुःख आ पड़ता है तो वह वृथा विलाप करके उसे और भारी नहीं बना लेता है किंतु उसमेंसे जितना कि अटल हो उतनेको धीरज और साहसके साथ सहनेको तत्पर हो जाता है। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि वह कड़े प्रारब्ध वादीकी नाँई हार मान कर उसके वसमें नहीं हो जाता है, क्योंकि वह यह मान लेता कि विपदा इसलिये आया करती है कि मनुष्यमें उसके काटने और सहनेकी सामर्थ्य पैदा हो, और यों अपने पुराने पापोंमें-से वह ऐसी सामग्री निकाल लेता है कि जो आगेकी वृद्धिके लिये बीजरूप साधन बन जाती है। क्योंकि ऋण चुकानेसे ही उसमें साहस और दृढ़ताके सद्गुण पैदा होते हैं और ये उसके साथ रहकर उसको सदा सर्वदा लाभ पहुंचाते रहते हैं।

२८—उसमें और संसारके लोगोंमें यह भेद होता है कि

वह सदा प्रसन्न चित्त रहता है, संकटमें धीरज और साहस बनाये रखता है, और दया और उपकार करनेमें तत्पर रहता है; परन्तु इसके साथ ही वह संसारको खिलौना नहीं समझता है और यह जानता है कि इसमें हरएकको बहुत कुछ काम करना है और खोनेको समय नहीं है। उसे निश्चय मालूम है कि वह अपनी ही आगेकी प्रारब्ध नहीं बनाता है किन्तु दूसरे लोग जो उसके आस पास हैं उनपर भी उसका भारी असर पड़ता है और इसलिये उसे पूरा विचार इस बातका रहता है कि अधिकारों (हुकूमत) के साथ ही साथ उसपर बड़े बड़े भार भी हैं।

२६—वह जानता है कि मनके विचार भी कोई वस्तु हैं और इनसे सहज ही बहुत बुराई भलाई हो सक्ती है। वह जानता है कि कोई मनुष्य अकेला नहीं रह सक्ता है क्योंकि उसके हरएक विचारका असर दूसरोंपर भी पड़ता रहता है। वह यह भी जानता है कि मनसे और मन शरीरसे जो जो तरंगें वह बाहर निकालता है वे दूसरोंके मन और मन शरीरमें प्रगट हो जाती हैं, और जिस जिससे उसका काम पड़े उसके मनकी भलाई या बुराईका यह कारण हो जाता है।

३०—इस तरहपर सदाचारके उसे ऐसे ऊंचे नियम मानने पड़ते हैं जो संसारिक सदाचारसे कहीं ऊंचे हैं क्योंकि वह जानता है कि उसे केवल अपने कर्म और वचन ही नहीं

वशमें रखना है, किन्तु अपने मनके विचार भी, इसलिये कि इनका असर इनके बाहरी रूप अर्थात् कर्मों और वचनोंकी अपेक्षा (वनिसबत) बहुत अधिक और दूरतक पहुंचनेवाला होता है। वह जानता है कि जब कोई मनुष्य दूसरोंका कुछ भी विचार नहीं करता है तब भी उसका उनपर भला या बुरा असर पड़ता है। दूसरोंपर उसके विचारका यों बे जाने असर तो होता ही है, परंतु इसके सिवाय वह जान बूझकर भी अपने विचारोंको उनकी भलाईके लिये काममें लाता है। वह अपने बहुतसे दुःखी मित्रोंको सन्तोष और सुखकी मानसिक तरंगें भेजता रहता है और यों उसके लिये एक बहुत बड़ा नया मार्ग उपकार करनेका खुल जाता है।

३१—वह अधर्मके विचारोंकी (अपेक्षा) उत्तम विचारोंकी ओर और नीचकी अपेक्षा उदारकी ओर सदा झुका रहता है। वह हरएक बातको उत्साह (हिम्मत) की दृष्टिसे देखता है न कि कायरतासे; और परमार्थी बना रहता है न कि स्वार्थी, क्योंकि वह जानता है कि यह ही असलियतमें सच है। वह हरएक बातमें बराबर भलाईकी ओर ही दृष्टि रखता है, जिससे कि उस बातमें भलाई बढ़े, और वह सदा उपकार करनेका उपाय करता रहता है, न कि बाधा डालनेका, और यों वह मनुष्योंका और भी अधिक उपकारी बन जाता है, और इस तरहसे वह चाहे कितना ही तुच्छ क्यों न हो इस विशाल दैवी उन्नति क्रममें सहायक और काम करने

वाला बन जाता है। यह जानकर कि मैं इस क्रमका एक अंग हूं वह अपने आपको सर्वथा भूल जाता है और दूसरोंके ही लिये जीता है। वह अपने भीतर जो ईश्वर है उसका भी अनुभव कर लेता है और उस ईश्वरका सदा सच्चा भाव दर्शाना सीख जाता है, और यों ईश्वरकी इच्छा पूरी करनेमें यह ब्रह्मज्ञानी केवल अपना ही कल्याण नहीं करता है किन्तु सबके लिये कल्याणका हेतु बन जाता है।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः सर्व ॐ शान्तिः ॥



Peace Be to all Beings


समाप्त